वर्ष-4, अंक : 19-20 मूल्यः ₹ 35/-

#metoo

ISSN 2454-6879
अंक 19-20 , सितंबर - दिसंबर 2018

देस हरियाणा
912, सैक्टर-13, कुरुक्षेत्र, (हरियाणा)-136118
संपादकीय - 94164-82156
संपर्क - व्यवस्था - 99918-78352
ई-मेल : haryanades@gmail.com
Website: desharyana.in
Facebook.com//desharyana
Youtube.com//desharyana

सहयोग राशि

व्यक्तिगत:	3 वर्ष 500/, 1 वर्ष 200/- (रजि. डाक खर्च अलग)
संस्था:	3 वर्ष 1400/-, 1 वर्ष 500/-
आजीवन:	5000/- संरक्षक :10000/-

ऑनलाईन भुगतान के लिए
देस हरियाणा, इलाहाबाद बैंक कुरुक्षेत्र
बैंक खाता संख्या - 50297128780,
IFSC: ALLA0211940

इबकी बार

आवरण डिजाइन **असीम**

स्वामी-प्रकाशक-सम्पादक-मुद्रक सुभाष चंद्र द्वारा 912, सैक्टर-13, कुरुक्षेत्र हरियाणा से प्रकाशित

लिंग-संवेदी भाषा की ओर एक कदम

अपने अल्फ़ाज पर नज़र रक्खो,
इतनी बेबाक गुफ्तगू न करो,
जिनकी क़ायम है झूठ पर अज़मत,
सच कभी उनके रूबरू न करो।

बलबीर सिंह राठी

आजकल संवेदनशील स्वतंत्रचेता नागरिक ये महसूस कर रहे हैं कि समाज का ध्रुवीकरण और घोर विभाजन हो रहा है। व्यक्तियों की पसंद-नापसंद और राजनीतिक दलों के प्रति पक्षधरता कट्टरता का रूप लेती जा रही है। परिणामस्वरुप सामाजिक-राजनीतिक-धार्मिक सवालों पर सांझे विमर्श की जगह सिकुड़ती जा रही है। मीडिया की चौबीसों घंटे की चिख-चिख लोगों के मुद्दों और चेतना को अधिग्रहित करके विभ्रम का वातावरण निर्मित कर रही है। लगता है विभ्रम का स्मॉग छाया हुआ है। सोशल मीडिया भी व्यक्ति को उसके दायरे तक सीमित रखने की रणनीति के तहत काम करता है। सोशल मीडिया व्यक्ति को वही विचार, व्यक्ति अथवा वस्तुएं दिखाता है जो व्यक्ति देखना चाहता है। इस तरह एक ही तरह के विचार, वस्तुएं, व्यक्तियों के घिरे रहने से एक खोल उसके इर्द-गिर्द बन जाता है। धीरे-धीरे पसंद-नापसंद के विकल्प सीमित होने लगते हैं। साहित्य और संस्कृति के दायरे भी इससे अछूते नहीं हैं।

इसके बावजूद कभी-कभी ऐसे जन-आंदोलन भी उठ खड़े होते हैं कि समाज की बौद्धिक ऊर्जा एक मुद्दे पर संकेंद्रित हो जाती है। पिछले दिनों हरियाणा में रोडवेज कर्मचारियों की हड़ताल ने समाज का ध्यान विकास-नीतियों की ओर आकर्षित किया। कर्मचारियों की हड़तालों के प्रति आमतौर पर उदासीन रहने वाली जनता की सहानुभूति और सहयोग भी इस हड़ताल को मिला। यह हड़ताल अपने वेतन-भत्तों में बढ़ोतरी से इतर रोड़वेज के निजीकरण को रोकने के लिए थी। सार्वजनिक सेवाओं के निजीकरण के अनुभव बताते हैं कि उससे लोगों का भला तो नहीं ही हुआ हां कुछ राजनेताओं और पूंजीपतियों के निरंतर मुनाफे का रास्ता इससे जरूर खुला है। स्वाभाविक है कि सीमित दायरे से जुड़ी हड़ताल का असर तो सीमित दायरे तक ही होगा, लेकिन इसने निजीकरण बनाम सरकारीकरण की बहस को फिर से चर्चा में ला दिया है। जो सत्ता के दमन को झेलते हुए साहस के साथ इसमें शामिल हुए वे प्रशंसा के पात्र हैं।

इसी तरह मी टू नामक आंदोलन ने भी समाज को प्रभावित किया है। मी टू की शुरुआत अमेरिका से हुई थी। अमेरिका में कार्यरत इतालवी मूल की अभिनेत्री आसिया अर्जेंटो ने मशहूर फिल्मकार हार्वी वेंस्टिन पर आरोप लगा कर इसकी शुरुआत की थी। यह अभियान थोड़ी देरी से भारत पहुंचा है।

यद्यपि महिला साहित्यकारों ने अपनी आत्मकथाओं में इस संदर्भ में विस्तार से लिखा है। इस लेखन ने साहित्यिक सैद्धांतिकी और विमर्श पर तो असर डाला है, लेकिन साहित्य के पठन-पाठन का दायरा सीमित है इसलिए ये रचनाएं बृहतर समाज में चर्चा का विषय नहीं बन पाई थी। मीटू की शुरुआत फिल्मी दुनिया और मीडिया से हुई है, व्यापक समाज से जुड़ाव

के कारण इसकी प्रभाव क्षमता भी व्यापक है।

मी टू एक ऐसा मंच बन गया है जिस पर महिलाएं यौन-दुर्व्यवहार को खुलकर बता रही हैं। मीटू ने जहां महिलाओं को आप बीती कहानियां कहने का अवसर दिया है, वहीं पुरुष प्रधान माहौल में पले-बढ़े लोगों को भी व्यवहार में घुसे लैंगिक-सामंती-यौनिक किटाणुओं को चिह्नने का अवसर दिया है। साथ ही दैहिक-आत्मिक-भावनात्मक संबंधों में जाने-अनजाने में हुए अगरिमापूर्ण व्यवहार के प्रति खेद प्रकट करने का अवसर भी दिया।

राजनेताओं की यौन-संबंधों के बारे में सी.डी. तो पहले भी आती ही रही हैं, लेकिन उनका मकसद सामाजिक बदलाव, विकृति अथवा शोषण को उजागर करना नहीं, बल्कि किसी राजनेता के कैरियर को चौपट करने तक सीमित था। मीटू में फिल्म-जगत और पत्रकारिता के क्षेत्र की जो कहानियां सामने आई हैं उनके बीच सच-झूठ की पहचान तो जांच का विषय है। इसमें सकारात्मक बात यह है कि पारिवारिक-सामाजिक बातचीत के दायरों से बाहर इस विषय पर अब ड्राइंग-रूम व डाइनिंग-टेबल पर सहजता से बातें होने लगी हैं और लिंग-संवेदी भाषा उसके लिए निर्मित हो रही है।

अभी तक इस विषय पर रहस्यमयी-अस्पष्ट और फुसफुसाहटी भाषा में ही संवाद होता था। इस भाषा की अपनी सीमाएं होती हैं जिसमें अर्थ निकालने का दायित्व कहने वाले से अधिक सुनने वाले पर होता है। विंडो वाचिंग टाइप इस भाषा में दिखता तो सच्चाई का सिर्फ एक टुकड़ा ही है, लेकिन श्रोता के पूर्वाग्रहों का आख्यान और कोण ही उसे अर्थ प्रदान करता है।

सही है कि समाज का बहुत ही छोटा सा वर्ग इसमें शामिल है, दलितों-वंचितों का बहुत बड़ा वर्ग शताब्दियों से जिसका शोषण हो रहा है वो अभी इसमें शामिल नहीं है। रेखांकित करने योग्य बात ये है कि यह छोटा सा वर्ग समस्त समाज को प्रभावित करता है। उम्मीद है कि यह कुछ घटनाओं, मुकद्मों और कुछ लोगों की पोल खोलने तक ही ये सीमित नहीं रहेगा। भविष्य में इस विषय पर फिल्में, टी.वी. धारावाहिक आदि दिखेंगे तो समाज पर गुणात्मक प्रभाव पड़ेगा ही।

महिलाएं अपनी बात कह रही हैं, इस पर दो तरह की आत्यंतिक प्रतिक्रियाएं देखने को मिल रही हैं। एक तो 'बासी कढ़ी में उबाल' 'बूढ़ी घोड़ी लाल लगाम' 'नौ सौ चूहे खाकर बिल्ली हज को चली' जैसे मुहावरे उछालकर खिल्ली उड़ाने और चटखारे लेकर मनोरंजन का हिस्सा बनाने की। दूसरी भावुक किस्म के तत-भड़कों की जो आरोपी का सार्वजनिक तौर पर पिटाई-अपमान-तिरस्कार से लेकर गोली से उड़ा देने तक की वकालत कर रहे हैं। इन दोनों को ही उचित नहीं ठहराया जा सकता।

मुझे याद आ रहा है दस-पंद्रह साल पहले मृत्यु-दंड के खिलाफ जुलूसों-धरनों-प्रदर्शनों में खूब बढ़-चढ़कर भाग लेते थे और तभी किसी घटना पर आरोपी के लिए फांसी की सजा मांगते हम जूलूस निकाल रहे होते। समय के साथ ही समझ में आया कि जिस तरह लोकतंत्र में विपक्ष की अहम भूमिका होती है सही भावना से उसे सुने जाने में ही लोकतंत्र मर्यादित रहता है ठीक उसी तरह आरोपी का पक्ष सुने जाने से न्यायिक-प्रक्रिया की पवित्रता व साख बची रहती है। तालिबानी न्याय कभी भी सामाजिक न्याय का आदर्श नहीं हो सकता।

मी टू प्रकरण से एक बात अच्छी हो रही है कि यौनिकता के साथ चिपकी नैतिक और इज्जत वगैरह की धारणाएं उससे दूर हो रही हैं, ये उसकी स्वाभाविकता को ही समाप्त कर रही थी।

मानव-देह के साथ ही मानव जीवन है। अपनी देह पर खुद का अधिकार स्वतंत्र मनुष्य की पहली शर्त है। मनुवादी-पितृसत्ता के व्रत व आदर्श नारी की अवधारणा आदि तमाम उपक्रम नारी-देह को नियंत्रित करने के लिए हैं। मी टू इस दिशा में एक कदम तो है, लेकिन पितृसत्ता के चौखटे को चुनौती प्रदान नहीं करता। इसलिए यह संभावनाशील अभियान भी कुछ देर अपनी चमक दिखाकर धूमिल पड़ जाने के लिए अभिशप्त है।

विस्फोटक ढंग से तो नहीं, लेकिन चुपचाप सामाजिक बदलाव की धारा निरंतर बह रही है। पिछले कुछ समय में महिला-संबंधी कुछ ऐतिहासिक कदम उठाए गए हैं जिनकी ओर संकेत करना यहां अप्रासंगिक नहीं होगा। मसलन तीन तलाक, व्यभिचार और सबरीमाला मंदिर में हर आयु की महिला के प्रवेश के मामले। इन व्यापक सामाजिक बदलाव के सवालों के प्रति उदासीनता ही दिखाई देती है।

दो सौ साल पहले राजाराम मोहन राय ने जिस जज़्बे से सामाजिक बदलाव की शुरुआत की थी और जोतिबा फुले-सावित्रीबाई फुले ने जिस चेतना से उसे ठोस आकार दिया था उससे ही भारतीय समाज में कुछ उल्लेखनीय बदलाव संभव है।

इस अंक में कहानी, कविताओं, ग़ज़लों, अनुवाद के साथ साथ साहित्यिक-सामाजिक-सांस्कृतिक विषयों पर आलेख हैं। उम्मीद है कि जनधर्मी विमर्श को आगे बढ़ाने वाली सामग्री समेटे ये अंक आपको पसंद आएगा।

आपकी प्रतिक्रियाओं का स्वागत है।

सुभाष चंद्र

खुल्ला बारणा

□ **साकी / एच. एच. मनरो, अनु - राजेन्द्र सिंह**

'साकी' प्रसिद्ध अंग्रेज लेखक एच. एच. मनरो का उपनाम है जिनका जन्म 1870 में ब्रिटिश बर्मा में हुआ। उन दिनों बर्मा भारत की ही एक राजनैतिक इकाई था। जब 1914 में प्रथम विश्व युद्ध शुरू हुआ तो इनकी की आयु 40 से ऊपर थी, लेकिन कोई बाध्यता न होने के बावजूद भी मनरो स्वेच्छा से अंग्रेजी सेना में भर्ती हो गये। अन्ततः 13 नवम्बर 1916 को फ्रांसिसी जमीन पर जर्मन सेना से लड़ते हुये युद्ध के मैदान में इनका देहान्त हुआ। कहानी के क्षेत्र में इनको वैश्विक स्तर पर उस्ताद का दर्जा हासिल है। द इंटरलोपर, द ओपन विण्डो, द टॉयज़ ऑफ़ पीस, द बुल, द ईस्ट विंग आदि इनकी अनेक कालजयी कहानियां हैं। इस अंक में प्रस्तुत है साकी उर्फ़ एच। एच। मनरो की विश्व प्रसिद्ध कहानी 'The Open Window' का हरियाणवी अनुवाद।

अनुवाद किया है राजेंद्र सिंह ने, जो राजकीय महाविद्यालय, गुड़गांव में अंग्रेजी के सहायक प्रोफेसर हैं। विश्व साहित्य के गहन अध्येता राजेंद्र सिंह की हरियाणवी जन-जीवन, भाषा व संस्कृति पर गहरी पकड़ है। इसी वजह से अनुवाद एकदम सहज-स्वाभाविक होता है। इनका अनुवाद हरियाणवी भाषा की सूक्ष्म अभिव्यक्ति की क्षमताओं को रेखांकित कर रहा है-सं।)

नटल साब, मेरी काकी बस या आई तळै, मड़ी सी हाण म्हं," पन्द्राह् साल की छोरी वीरा किसे बड़्डे-बडेरे की तरियां जमा टिकाई तै बोली, "जय्ब तक थोड़ी सी ठ्यरास राखो, अर चाहो तो मेरी गैल बतळा ल्यो। मैं उळगी ए हूँ।"

फ्रैमटन नटल सोच्चण लागग्या के ओ इसी कुणसी चिकणी-चुपड़ी बात करै के भतीजी खुस हो जे, अर इसकी काकी आवै तो उसनै बी बुरा नीं लाग्गै। पर भीत्तर ए भीत्तर फ्रैमटन का सक और बी गहा होण लागग्या के घबरोह्ट की जिस बिमारी के एलाज के चक्कर म्हं ओ उरै सहर तै दूर आया था, अर अणजाण माणसां तै मिलण-फेट्टण लागर्या था - इसका किम्मे फैदा बी था अक ना।

"मन्नै बेरा है के बणैगी," उसकी बेबे नै कह्या था जय्ब ओ देहात मैं जाण की तैयारी करर्या था, "तू ओड़ै जा कै कती कल्ला हो जैगा। ना तू किसे गैल बोल्लै-बतळावै, ना तेरा जी लाग्गै। तेरी या घबरोह्ट की बिमारी दूणी हो जैगी। मैं तो इतना जाब्ता कर सकूँ के ओड़ै जितने लोगाँ नै जाणुं, उनकै नां की चट्ठी बणा के दे द्यूंगी। जड़ै तक मेरै याद आवै, उन्मैं तै कई तो बड़े भले माणस थे।"

फ्रैमटन सोच म्हं पड़ग्या के जिस बीरबान्नी बर्टी सैप्पलटन के घर ओ आज मिलण आया था, उसकी गिणती उन भले माणसां मैं होवै थी अक ना।

"उरै लवै-धोरै त्हाम कितने लोगां नै जाणो ?" वीरा नै पूछ्या, जय्ब उसपै और घणी चुप्पी बर्दास्त नींह् होई।

"एक नै बी नीं," फ्रैमटन बोल्या, "असल मैं मेरी बेबे कुछ दिन उरै पादरी के घरां रही थी, कोए चार साल पहल्यां। उसनै ए मेरै तांहि उरै के कुछ बसिन्दों के नाँ की सिफारसी चट्ठी दी थी।"

फ्रैमटन नै आखिर आळी बात कुछ दुखी सा हो के कही थी।

"इसका मतबल त्हाम मेरी काकी के बारै म्हं कुछ नीं जाणदे ?" छोरी नै फेर बड़ी टिकाई तै पुच्छया।

"बस नाम अर पता बेरा है," फ्रैमटन नै हाँ भरी। ओ सोच म्हं पड़ग्या के सैप्पलटन सुहागण थी अक बेवा थी। जय्ब उसनै साब्बत बैठक म्हं नजर मारी तो न्यू लाग्या जणूं ओड़ै कोई जनानी रह्न्दी ना हो।

"मेरी काकी गैल जो बोह्त ए बुरा हादसा होया, उसनै तीन साल हो लिए," छोरी बोली, "त्हारी बेबे तो उस टेम उरै तै जा ली थी।"

"हादसा ! कुणसा हादसा ?" फ्रैमटन नै पुच्छया। या तो बात उसनै सोची ए कोनी थी के देहात के शांत माहौल म्हं किसे गैल कुछ आच्छी-भुन्डी बी बण सकै।

"त्हामनै या बात कोनी सोची के कातिक की इस ठण्ड म्हं बी, बैठक का यू बारणा पूरा खुल्ला क्यूँ पड़्या सै," बाहर आंगण म्हं खुलण आळे बारणे कानी आंगळी करदी होइ भतीजी बोली।

"इतनी घणी तो खैर ठण्ड होइ कोनी सै," फ्रैमटन बोल्या, "पर इस बारणे का उस हादसे गैल के लेणा-देणा सै ?"

"आज तै ठीक तीन साल पहले, ठीक इसे बारणै म्हं को, मेरी काकी का घरआळा अर काकी के दो छोटे भाई शिकार खेलण गए थे। बोह्ड़ कै आये ए कोनी। यु जो स्याम्मी बरानी सिमाणा पड़्या सै, इसनै पार करदी हाण धोखै तै एक दलदली खढै म्हं जा पड़े। उस बरस बारिस बोह्त होइ थी। जमीन बी जो ठीक-ठाक थी, आप्पो जगहां-जगहां तै गरकण लाग गी। उनकी

लास बी नीं पाई। सबतै घणा दुख तो हामनै इसे बात का सै।"

या बात कहन्दे-कहन्दे बाळक की आंख्यां मैं पाणी आग्या अर उसका गळा रुंधण सा लागग्या।

"मेरी काकी बेचारी सारी हाण न्यू ए सोचे जावै सै के कदे ना कदे तो वैं जरूर उल्टे आवैंगे। वैं तीनों अर म्हारा काळा कुत्ता बी जो उनकी गेल्याँ ए खूग्या था। वैं सारे इस्से बारणे मैं को आवैंगे, जिस्मैं को गए थे। यू बारणा हाम कदे बी बंद नीं करदे, अंधेरा होण तै पहलां। बेचारी काकी, कितनी बार तो उसनै मेरै तांहि बताया होगा के वैं सारे क्यूकर बाहर गए थे। काका नै धौळा बरसाती कोट कांधै पै गेर राख्या था। रॉनी, काकी का सबतै छोटा भाई, गाणा गाण लागर्या था अर काकी नै खिजावै था :

'ए बर्टी, यु सारा घर सै हाल्लै

तू क्यूँ उछळ-उछळ कै चाल्लै ?'

यू गाणा सुणकै काकी कै जळैवा ऊठज्या करदा। काकी की बात सुण-सुण कै कई बै तो मन्नै बी न्यू लाग्गै के वैं जरूर एक दिन इस बारणै म्हं को चाल कै उल्टे ...," छोरी नै सुबकणा सरु कर दिया अर बात आधम म्हं ए रहगी।

फ्रैमटन बी बिचळ सा गया। उसकी समझ म्हं नीं आया के करै। उसकी साँस मैं साँस जिद आई जब्ब चाणचक काकी पोहंचगी। वा बाट दिखाण पै माफ़ी मांगदी होई बोली:

"मेरै जचै सै, वीरा नै जी तो लायें राख्या होगा ?"

"अँ ! हाँ हाँ... बड़ी भली छोरी सै," फ्रैमटन नै जबाब दिया।

"यु बारणा जै खुल्ला रवै तो, त्हामनै कोए दिक्कत तो नीं ?" बर्टी बोली, "मेरा घरआळा अर भाई शिकार खेल कै बस उल्टे आण आळे सैं। वैं सारी हाण बस उरै ए को आवैं। आज वैं बीड़ के दलदल आळै हिस्सै मैं काब्बर का शिकार करण गये सैं। मन्नै बेरा, वैं मेरे दरी-गळीच्यां का बुरा दीन कर देवैंगे। त्हामनै बेरा आदमी की किसी जात होवै। ठीक कह री हूँ ना ?"

फेर काकी बिना साँस लिये, बात पै बात करदी रही - कदे शिकार की, कदे काब्बराँ की, अर कदे जाड़्यां मैं बत्तख़ाँ की कमी की। उसकी बात सुण-सुण कै फ्रैमटन कै भय म्हं जाड्डा सा चढग्या। उसनै बड़ी कोसिस करी के बात नै टाळ दे, किसी और मुद्दै पै बात हों। फेर उसकै समझ मैं आया के उस बीरबान्नी का उसकी बातां म्हं तो ध्यान ए कोनी था। उसकी नजर तो बस बाहर खुल्ले सिमाणे पै अटकी पड़ी थी। या उसकी बस बुरी किस्मत ए थी के ओ एक त्रासदी की बरसी पै इस घर मैं आण पड़्या था।

"मैं जितने बी डॉक्टरां तै मिल्या हूँ, सबनै एको बात कही सै के भाई पूरा अराम कर, दुख-चिंता तै बच के रहो, अर कोए बी खुभैत या भाग-दौड़ का काम नीं करणा। पर खाण-पीण के मुद्दै पै कोई बी दो डाक्टर एक रै कोनी," फ्रैमटन जोर दे कै बोल्या। बोह्त सारे लोग-लुगाइयाँ की ढाळ ओ बी न्यू ए मान्या करदा के अणजाण-बिराणे लोग बी दुसर्यां की बिमारी, उनके इलाज-परहेज के किस्से पूरा ध्यान ला कै सुणैं।

"के?" बर्टी सैप्पलटन जंभाई लेंदी होइ बोली। फेर चाणचक उसका चेहरा खिल सा गया। मामला फ्रैमटन की राम-कहाणी का नीं, कुछ और था।

"वैं आ गे ! वैं आ गे !" वा ठाडु रुक्का मार कै बोली, "ठीक चा कै टेम आये सैं। इनका हाल तो देखो, जमा आंख्यां तक चिक्कड़ मैं अंट रे सैं। "

फ्रैमटन के काम्बणी चढ़गी। उसने मुड़ कै भतीजी कानी देख्या जणूं दिलासा देणा चाह्न्दा हो। छोरी पहल्म ए बारणै म्हं को बाहर देखण लाग री थी।

डर म्हं उसके दीद्दे बाहर लिकड़न नै हो रे थे। फ्रैमटन कसूता डरग्या। उसनै घूम कै बाहर देख्या जित काकी भतीजी की नजर गढ़ी पड़ी थी। फ्रैमटन नै तिवाळा आया।

मुँह-अँधेरे का बख्त था। तीन माणस आंगण कै बिच्चो-बीच होंदे होए, बारणै कानी आण लाग रे थे। तीनुआँ के कांद्यां पै बंदूक थी। एक जणै के कांधै पै धौळा कोट झूल्लण लागर्या था। एक काळा कुत्ता उनकै पाछै-पाछै था। चुपचाप वैं बैठक कै लवै सी पोहंचगे। फेर अंधैरै म्हं तै एक गाणै की अवाज आई। गाण आळै का जणूं गळा बैठर्या हो :

'ए बर्टी, यु सारा घर सै हाल्लै

तू क्यूँ उछळ-उछळ कै चाल्लै ?'

बैठक म्हं जणूं तुफ़ान आग्या हो। फ्रैमटन नै सैड़ दी सी अपणा डण्डा अर टोपा ठाए, फेर आंधा हो कै बाहर भाज लिया। चौंक आळा दरवाजा, बरण्डा, दहळीज - उसनै कुच्छ नीं दिख्या। बाहर गाळ म्हं एक सैक़ल आळै म्हं धसूड़ मारी होन्दी, उस बेचारै नै बचण खात्तर सैक़ल कांड्यां आळी बाड़ मैं पौ दिया।

"ल्यो भई, हाम पोह्न्चगे हाँ," धौळै कोट आळा खुल्लै बारणै म्हं को भीत्तर बड़दा होया बोल्या, "धँस तो आज जमा भुन्डी तरियां गये। अर यु अरड़ु कूण था ? हामनै देखदें उसका खखाटा पाट्या !"

"के बताऊँ, माणस के चाळा था। नटल-पटल, बेरा नी के नाम था ," बर्टी बोली, "बस अपणी बीमारी ए की बतान्दा रह्या। त्हामनै देखदें गोळी की तरां छुट लिया, बिना कुछ कह्एं-सुणें। ओ तो न्यू भाज्या, ज्युकर कोए भूंत देख लिया हो।"

"मेरै हिसाब तै तो ओ अपणै काळु नै देख कै भाज्या सै," भतीजी नै बड़ी टिकाई तै कह्या, "मेरै तांहि बतावै था ओ के उसकै मन म्हं कुत्त्यां का खौफ बैठ्या होया सै। पहलां ओ

इण्डिया मैं नौकरी कर्या करदा। एक बै गंगा नदी कै कंठारै, अवारा कुत्त्यां का एक टोळ उसकै पाच्छै पड़ लिया। ज्यान बचाण खात्तर ओ भाज कै एक कबरिस्तान मैं बड़ग्या अर तग्गाजा करकै एक ताज़ी खुदी होड़ कबर मैं कूदग्या। सारी रात कुत्ते उसकै सिर पै बैठे रह्ए। गुर्रांदे रह्ए, दांद पिसदे रह्ए अर अपणी लाळ उसकै उप्पर गेरदे रह्ए। जिस गैल इस ढाळ के हादसे बीत लिये हों, ओ डरै नीं तो के आपणी इसी-तिसी करवावै !"

आँख की झमक म्हं गपौड़ घड़ण के मामलै म्हं या छोरी सबकी सबकी बुआ लाग्गै थी। संपर्क - 7988861907

एक शरणार्थी का उदास गीत

□ डब्ल्यू० एच० ऑडेन, अनुवाद -दिनेश दधीचि

(दिनेश दधीचि स्वयं उच्च कोटि के कवि व ग़ज़लकार हैं। उन्होंने विश्व की चर्चित कविताओं के हिंदी में अनुवाद किए हैं, जिंहें इन पन्नों पर आप निरंतर पढ़ते रहेंगे। इस बार प्रस्तुत है डब्ल्यू० एच० ऑडेन Refugee Blues कविता का अनुवाद)

एक करोड़ इन्सान तो होंगे इसी शहर में
कुछ महलों में रहते हैं तो
कुछ खोली में रहते हैं।
नहीं हमारे लिए स्थान बस
नहीं कहीं भी स्थान बचा।

कभी हमारा देश भी था जो
हमको अच्छा लगता था।
मानचित्र में देखो, प्यारे,
मिल जाएगा तुम्हें ज़रूर।
नहीं मगर अब हम जा सकते,
वहां नहीं जा सकते हैं।

गिरजाघर था एक, गांव में
पेड़ पुराना वहां उगा है।
स्वयं सहज ही हर वसंत में
नये सिरे से खिल उठता है।
किंतु पुराने पासपोर्ट के
साथ नहीं हो सकता ऐसा,
कभी नहीं हो सकता है।

दूतावास का इक अधिकारी
मेज़ पे मुक्का मार के बोला-
"अगर नहीं है पासपोर्ट, तो
जीवित कहां रहे तुम, बोलो?"

लेकिन हम ज़िंदा हैं अब भी,
देखो, हम ज़िंदा हैं, प्यारे!

गया समिति के पास कि जिसने
कुर्सी पर था मुझे बिठाया।
अगले वर्ष पुनः आने का
मुझको फिर आदेश सुनाया।
आज मगर हम जायं कहां
अब जायं कहां हम, यह बतलाओ।

एक जनसभा में पहुंचा मैं
वक्ता कोई बोल रहा था-
"इनको आने दिया अगर,
तो अपनी रोटी छिन जाएगी।"
बात तुम्हारे और मेरे बारे में ही थी,
बात हो रही थी अपनी ही, दोस्त, वहां पर।

आसमान में मेघों के गर्जन-सी
मुझे सुनाई दी वह।

बिल्कुल हिटलर के जैसी थी,
जिसने यूरोप में बोला था,
"इनको तो मरना ही होगा!"
वह भी बात हमारी ही थी।

जैकेट पहने श्वान को देखा,
पिन से कसी हुई थी जैकेट।
इक दरवाज़ा खुला और
बिल्ली को भीतर मिला दाख़िला।

लेकिन वे थे नहीं यहूदी,
नहीं यहूदी जर्मन थे वे।

बंदरगाह में जा कर देखा,
खड़ा रहा मैं सागर-तट पर।
तैर रहीं आज़ाद मछलियां
दस फ़ुट की दूरी पर, प्यारे!
केवल दस फ़ुट की दूरी पर।

इक जंगल में से गुज़रा मैं
पेड़ों पर पाखी भी देखे।
कोई सियासतदान नहीं था
उनमें, और वे मस्ती में गाया करते थे।
लेकिन वे इन्सान नहीं थे,
प्यारे, वे इन्सान नहीं थे।

एक हज़ार मंज़िलों वाले
एक भवन का सपना देखा।
एक हज़ार खिड़कियां उसमें,
इक हज़ार ही दरवाज़े थे।
लेकिन कोई हमारा था क्या?
नहीं, हमारा कोई नहीं था।

एक बड़े मैदान में गिरती
बर्फ़ बीच मैं खड़ा हुआ था।
उसमें दस हज़ार सैनिक थे
इधर से उधर गश्त कर रहे।
ढूंढ रहे थे तुझको-मुझको,
हम लोगों को ढूंढ रहे थे।

संपर्क - 9354145291

क्यों हो भरोसा भभूत का!

□ राजगोपाल सिंह वर्मा

(पत्रकारिता तथा इतिहास में स्नातकोत्तर शिक्षा प्राप्त करके राजगोपाल सिंह वर्मा ने केंद्र एवं उत्तर प्रदेश सरकार में विभिन्न मंत्रालयों में प्रकाशन, प्रचार और जनसंपर्क के क्षेत्र में जिम्मेदार वरिष्ठ पदों पर कार्य किया। पांच वर्ष तक प्रदेश सरकार की साहित्यिक पत्रिका "उत्तर प्रदेश" का स्वतंत्र सम्पादन किया। कविता, कहानी तथा ऐतिहासिक व अन्य विविध विषयों पर लेखन करते हैं - सं।)

वो ही है महाराज जी की कुटी बहन...", ड्राईवर ने बस की रफ़्तार धीमी करते हुए उन्हें बाईं ओर की पगडंडियों की तरफ संकेत करते हुए बताया।

"कुटी क्या अच्छा खासा आश्रम कहो बाबा जी का...", ड्राईवर के पीछे की सीट पर बैठे एक यात्री ने अपना ज्ञान बघारा और श्रद्धा में अपना सर झुकाया।

कंडक्टर की सीटी बजी और सुरेंदरी अपना थैला, लगभग सात साल के बच्चे अनंत और अपने देवर राजेश को उतारने के बाद आगे बढ़ गई। उसके पैरों में हवाई चप्पल थी, एक कॉटन की साड़ी, और ब्लाउज के नाम पर पुरुषों वाली पूरी बांह की सफ़ेद रंग की कमीज़, जो धुली होने के बावजूद भी पुरानेपन का आभास दे रही थी।

पगडण्डीनुमा जरूर था वह रास्ता, पर इतनी जगह थी वहां कि कच्चा रास्ता होने के बावजूद दो बड़ी गाड़ियां भी उस रास्ते पर आसानी से जा सकती थीं। मुख्य मार्ग से लगभग दो फर्लांग पर था स्वामी जी का "मोक्ष आश्रम"।

दिल्ली से सहारनपुर या रूडकी तक यूँ तो स्टेट हाईवे है, और अभी उसको और चौड़ा किया गया है, लेकिन उसमें कई पैचेज ऐसे हैं जैसे कि गाँव का कच्चा रास्ता हो। बहुत दुरूह लगता है ऊबड़-खाबड़ रास्ते का सफर। बडौत कस्बे से दूरी तो होगी 170 किलोमीटर ही, पर जगह-जगह बस बदलने की यह यात्रा असीमित समय ले लेती है।

दारुल उलूम वाले विश्वविख्यात देवबंद कस्बे में उतरकर फिर रुड़की जाने वाली सड़क पर सादतपुर गाँव के जंगलों में स्थित था ज्ञानी पुरुष सिद्धि प्राप्त महात्मा जी का यह आश्रम। आज उनसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त होना था सुरेंदरी को। ऐसे में रास्ता अच्छा हो या खराब, बेमानी है। हो सकता है कि आज उसके दुखों का अंतिम दिन हो, और ऐसा निवारण हो कि जो कष्ट उसने पिछले साल साल में झेले हैं, सब मिट जाएँ और वह भी राज करे... अपने घर पर, अपने पति के दिल पर, और सुख ही सुख हों, उसकी इस जिंदगी में।

नहीं, वह किसी सामान्य पारिवारिक समस्या की शिकार नहीं थी। उसकी समस्या थोडा जटिल थी, और आश्रम में स्वामी जी के पास ही निदान की संभावनाएं मिल सकती थी उसे। यूँ तो वह आश्रम मुख्य मार्ग से दिखता था, पर था थोड़ा दूर। आखिरकार मुख्य मार्ग से दो फर्लांग का पैदल का रास्ता पूरा हुआ, और सुरेंदरी ने आश्रम की ड्योढ़ी पर प्रवेश किया। दूर से ही दिखना आरंभ हो गया था कि वह कोई ऐसी कुटी नहीं थी, जैसी झोंपड़ीनुमा संरचना की हम कल्पना करते हैं, जिसमें कोई जटाधारी साधू धूनी रमाये बैठे हों। आस-पास कुछ शिष्य उनके साथ हों और हो कुछ सामान... कुछ कांसे और लकड़ी के बर्तन, पानी के लिए मिट्टी का घड़ा और कुछ फल रखे हों। खुद बैठे हों लकड़ी के तख्त पर।

विशाल परिसर था वह सुरेंदरी के हिसाब से। बीघों में फैला होगा। पिछले सात सालों से वह न जाने कहाँ-कहाँ भटकी थी... न जाने किस-किस से अपनी फ़रियाद की थी, घर-परिवार के साथ जमीन से जुडी कितनी समस्याओं को अकेले अंजाम तक पहुँचाया होगा, कैसे एक-एक रुपया जोड़कर अपने तीन बच्चों-- दो लड़कों और एक लड़की को पढ़ाने की जुगत की..., तब उसे गाँव का अपना दो कमरों का हिस्सा भी पर्याप्त लगता था, जिस पर अभी भी उसके भाई-भतीजों और ससुर तक की भी निगाह थी।

कोई नहीं चाहता था कि वह रहे यहाँ पर। पर वह जाए कहाँ ? कितने लालची, कृपण और निर्दयी हो जाते हैं अपने ही लोग। यदि उनका विवाहित बेटा एक दिन अचानक गायब हो जाता है, तो वह उसे ढूँढने के बजाय उसकी पत्नी को कोई मदद देना तो दूर, उसके न्यायपूर्ण हिस्से से भी वंचित करने का षड्यंत्र करने लगते हैं... यह कौन सी सोच है। किस धर्म और शास्त्र में ऐसा कहा गया है। और इस अधर्म का भुगतना किसे पड़ेगा... !

वे आश्रम में प्रविष्ट हो चुके थे। लाल पत्थरों की चाहरदीवारी पर लोहे का बड़ा गेट था, जिस पर दो बंदूकधारी

गार्ड एक-एक कर लोगों को प्रवेश करा रहे थे और निकलने का रास्ता दे रहे थे। अंदर संगमरमर का एक विशाल हाल था। साथ में कई कक्ष बने थे, फुलवारी लगी थी और विशाल लॉन भी था। एक ओर बड़ी किचेन थी और दूसरी ओर बताते हैं कि स्वामी जी का शयन और पूजा कक्ष था। उसकी भव्यता का अनुमान बाहर लगे नक्काशीदार पत्थरों और स्टील के ड़िजाइनर प्रवेश द्वार से ही हो जाता था।

उन लोगों को वरांडे में रखे मूढों पर बैठने को कहा गया, हालांकि अभी दो मूढे ही खाली हुए थे। लगभग बीस-बाईस लोग प्रतीक्षा में बैठे थे, या मंडरा रहे थे। कुछ आलीशान गाड़ियों से फलों, मिठाइयों और नाना प्रकार की वस्तुओं के पैकेट लेकर आ-जा रहे थे। कुछ सीधे अंदर प्रवेश कर जाते, कुछ को बुलावा आ जाता। पर, उनको और उनके जैसे कुछ और श्रद्धालुओं को प्रतीक्षा करने को कहा गया। परिसर में भंडारा चल रहा था। तरह-तरह के पकवान पत्तलों पर परोसे जा रहे थे। देशी घी में तले व्यंजनों की खुशबुएँ फ़ैल रही थी, पर सुरेंदरी को वास्तव में भूख नहीं थी। अनंत को उसने रास्ते में भी दो पूड़ियाँ और सब्जी खिला दी थी, अब उसे फिर से भूख लगी, तो बैग से निकालकर दो पूड़ियाँ और आलू की सब्जी उसे और दे दी थी।

कुछ लोग भगवा वस्त्र में और कुछ श्वेत परिधानों में परिसर में घूम रहे थे, दूर कहीं से पूजा सामग्री के ज्वलन की महक भी नथुनों में प्रविष्ट कर रही थी। उनको बैठे-बैठे लगभग डेढ़ घंटे हो चले थे, पर गुरु जी का बुलावा अभी भी नहीं आया था।

बेचैन सुरेंदरी ने गेट पर खड़े गार्ड से गुरु जी से मिलने के बारे में जानकारी ली। पर उसकी क्लिष्ट भाषा से कुछ भी समझ नहीं आया कि महाराज से कैसे भेंट होगी। वह ठहरी निपट गंवार। सीधे खेत का काम निपटाकर और जानवरों के दोपहर तक के चारे का इंतज़ाम कर के आई थी वह। उसके दिमाग मे तो फिर से वही दृश्य घूम रहा था कि उसकी दोनों गाय, चार भैंस और पांच बछड़े भूख से व्याकुल होंगे।

एक भगवा परिधान वाले युवा से बात की उसने, जो परिसर में ध्यान मग्न टहल रहा था। उसने रुक कर गौर से सुना और सौम्यता से कहा,

"देवी, आपको क्या कष्ट है...बताएं। गुरु जी से मिलने की प्रक्रिया निर्धारित है। आपको उसका पालन करना पड़ेगा। जितना हो सकेगा मैं आपकी मदद अवश्य करूंगा"।

"भाई तू मझै गुरु जी तै अलग तै मिलवा दे...। भगवान भला करेगा तेरा। मेरी दिक्कत तो वो ही दूर कर सकै...", सुरेंदरी ने कहा।

वह सेवक अंदर चला गया। लगभग दस मिनट बाद आया तो बोला, " आप चलिए मेरे साथ...। लेकिन अकेले ही। और किसी को इजाजत नहीं है"।

"पर इस बालक कू केल्ला कुक्कर छोड़ दूं...चलण दे इसै बी...", थोड़ी दृढ़ता से कहा सुरेंदरी ने।

कुछ ना-नुकुर के बाद अंततः सेवक राजी हो गया। बच्चा अनंत और मां सुरेंदरी सेवक के पीछे-पीछे चले। उस गेट के भीतर से पीछे जंगल का रास्ता था। थोड़ी दूर पर वहां भी एक अच्छा-खासा हाल बना था। उस हाल में कई लोगों के समूह मद्दिम संगीत के मध्य विशिष्ट ध्यान मुद्राओं में लीन थे। अलग से रास्ता बनाते हुए वह लोग भीतर के एक बड़े कमरे में प्रविष्ट हुए। वहां पहले से ही कई लोग बैठे थे। गहन चुप्पी थी वातावरण में। इंसानों की मौजूदगी के बावजूद मौत-सी ख़ामोशी! कमरे में प्रकाश बहुत कम था। एक तो कम रोशनी दूसरे उसकी कम होती आँखों की दृष्टि-- सुरेंदरी को दूर से कुछ समझ नहीं आया। उसने किनारे से जगह बनाकर अनंत का हाथ पकड़े-पकड़े आगे जाने की युक्ति लगाई, ताकि वह स्वामी जी के निकट पहुँच सके। अंततः वह सफल हो गई। वह ध्यानमग्न गुरु जी के सामने थी अब।

निकट पहुँचते ही सुरेंदरी को लगा कि उसकी धडकनें काम करना बंद कर देंगी। धरती और आकाश एक होते दिखाई दिए। आँखों के सामने कभी हज़ार वाट के बल्ब और कभी गहन अँधेरे बियाबान रास्ते दिखते। उसे समझ ही नहीं आया कि यह क्या हुआ उसे। कहीं स्वप्न तो नहीं देख रही वह। पर, नहीं... स्वप्न नहीं था यह। साक्षात महेंद्र प्रताप सिंह उसके सामने था... सिद्ध बाबा, गुरु जी, स्वामी जी, और भभूत वाले बाबा जी, जो भी था वह महेंद्र ही था। सात साल हुए थे उसे गायब हुए, और वह यहाँ ध्यान मग्न बैठा था। यह क्या किसी चमत्कार से कम था। धक्का भी लगा उसे... पर दूसरी ओर ख़ुशी भी। वह निहारती रही महेंद्र को...। उसी महेंद्र को, जिसके साथ उसने सात फेरे लिए थे। जिसने जीने-मरने की कसमें खाई थी उसके साथ। जो उस समय लगता था वास्तव में प्यार करता था उसे... क्रोध भी आ रहा था उसे। कैसा इंसान है जो गुमनामी में छोड़ गया उसे अकेले जूझने के लिए। तीन बच्चों को पालना... बिना किसी की मदद के, आसान है क्या! ऐसा इंसान क्या कोई सिद्ध पुरुष हो सकता है।

लगभग दस मिनट बाद आँखें खोली महेंद्र ने। हाँ, वह अब गुरु जी नहीं, न कोई सिद्ध महात्मा था। वह मात्र महेंद्र ही तो था सुरेंदरी के लिए। शरीर थोडा कमजोर दिखता था। बावजूद वैभव के। शरीर पर श्वेत वस्त्र का परिधान जो धोती की तरह मात्र निचले हिस्से को ढके हुए था। बाल खिचड़ी हो गये थे। दाढ़ी के बाल भी सर के बाल जितने बढे हुए थे, घनी बेतरतीब मूंछें, और उस

सब के बीच दो आँखें, और चेहरे के भाव… वह भला छिपते हैं क्या।

सुरेंदरी के बैठने की जगह ऐसी थी कि आरामदेह चांदी-जड़ित सिंहासन पर बैठा महेंद्र चाह कर भी उसे अनदेखा नहीं कर सकता था। साफ़ था कि उसने सुरेंदरी की आँखों में झाँक लिया था। एक बारगी उसने फिर से आँखें बंद की। हाँ, वह कुछ परेशान तो दिख रहा था। न केवल खुद बल्कि उसकी बंद आँखों की पुतलियां भी विचलित प्रतीत हो रही थी। स्पष्टतः उसने सुरेंदरी को पहचान लिया था।

कोई भूल भी कैसे सकता है। विवाह होना, और तीन बच्चों का पिता होकर दिन-रात का साथ होना। गंध भी जानी पहचानी लगती है उन दोनों को अपनी, और क़दमों की आहट भी, फिर यह तो सशरीर उपस्थिति थी उन दो आत्माओं की जो न जाने कितने वसंत और कितनी शीत ऋतुओं में दो जिस्म-एक जान बन कर साथ रहे थे।

अचानक महेंद्र ने अपने सेवकों को कुछ संकेत किया और अपने स्थान से उठ खड़ा हुआ। सेवकों ने आसपास घेरा बना लिया, और वह पीछे के दरवाजे से चला गया। भक्तों ने उसके पैरों की धूलि को माथे पर लगया और वापिस लौटने लगे। पर, सुरेंदरी खडी रही। एक सेवक से बोला उसने कि वह बिना मिले नहीं जायेगी।

“पर… यह असंभव है… गुरु जी अब धूनी रमाने में व्यस्त हैं। इस समय वह कोई व्यवधान नहीं चाहते। आप कल आयें…”, उसने दृढ़ता से कहा।

“अरै… तू बोल उसतै...घर तै हूँ मैं उसके… क्यूँ नी मिलेगा वो...होगा बड़ा महात्मा...सब पता मझै…।मेरे धोरे ई तो रहा वो इब लो… इब सांग भर रा…”,

सुरेंदरी की आवाज में वर्षों का छिपा आक्रोश उभरकर सामने आने लगा तो लोग इकट्ठा होने लगे। दो सेवक उसे मुख्य हाल की तरफ ले जाने का प्रयास करने लगे। तब वह बिफर पड़ी। बोली,

“मैं औरत हूँ उसकी…। खबरदार, जो मझै हाथ लगाया”।

सन्नाटा छा गया। खुसफुसाहटें होने लगी, कुछ और सेवक आ गये, कुछ भक्तगण भी बातों में रुचि लेने लगे। तभी पीछे के दरवाजे से बुलावा आया। दो सेवक साथ लेने आये उसे। गुरु जी ने उसी स्थल पर बुलाया था जहाँ वह धूनि रमाये हवन कर भभूत देते थे।

लगभग ढाई सौ मीटर दूर, जंगल में एक सज्जित कुटिया में धूनी रमाये बैठे थे श्रीमान महेंद्र गुरु जी। कक्ष में वह अकेले थे। श्रद्धालु बाहर प्रतीक्षारत थे। केवल सुरेंदरी और उसके पुत्र को अंदर जाने की अनुमति मिली थी।

सुरेंदरी ने देखा कि वह आँख बंद कर एक ख़ास मुद्रा में धीमी आंच वाले कुंड के पास बैठा है। एक सेवक ने उसे रास्ता दिखाया। वह बालक का हाथ पकड़े उसके निकट तक गई। वहां गुरु जी खुद एक चौडी चौकी पर विराजमान थे और तीनों ओर लकड़ी की साधारण पटरियां रखी थी। वह बच्चे को लेकर उनके बगल वाली पटरी पर बैठ गई। कुछ ही क्षणों में गुरु जी महाराज की आँखें खुली। वह हडबडा गये। बोले,

“देवी… यहाँ नहीं, सामने बैठो...थोडा दूर… हाँ हाँ, उस तरफ”, उन्होंने संकेत करते हुए बोला।

“दूर…? कितनी दूर... सात बरस तक दूर रह कै मन नीं भरा तेरा...”। सुरेंदरी ने अप्रत्याशित रूप से अपने मन का गुबार निकालना शुरू किया।

“देवी… आप व्यर्थ की वार्तालाप में समय नष्ट न करें… बताएं कैसे आना हुआ…”, कहते हुए महेंद्र उर्फ़ गुरूजी ने पास रखे फलों में से बालक के हाथ में एक सेव पकड़ा दिया।

“सुण बाब्बा … देवी कहिये अपनी मां कू… जिन्नै तझै जणा। मैं तो तेरे करम देक्खे...अर खूब देक्खे। अर गुरु जी होगा तू इन बेकूफों का… मझै तो नूं पता अक तू भगोड़ा है। तू ऐसा इंसान है जो अपणी ब्याहता औरत को राक्षसों के बीच में बिना किसी सहारे के केल्ला छोड़कै भाग ग्या। तझै पता तेरे पीच्छै के बीती मेरे पै। तझै क्यूँ पता होगा अक कुक्कर-कुक्कर पाला मैंने तीनूं बालकू कूं… तू तो यहाँ धूनी रमाऊ बैटठा। थोडा सा बी ख्याल नी आया इनका... सारी सरम बेच कै खा ग्या तू। तझै तो नरक मैं बी ठिकाना नी मिलने का… देखता रहिये के फल मिलेगा तझै इसका ! अर इस बालक कू ना चाहता तेरा यू सेव। इब लो तेरे इस सेव के बिना ई पाला इसै मैं…”, कहते-कहते सुरेंदरी क्रोध से कांपने लगी।

“शांत देवी…। ऐसे क्रोध नहीं करते...सब ठीक होगा।।”, ऐसे बोला महेंद्र जैसे कुछ हुआ ही न हो।

“शांत तो मैं हूँ ही…।नहीं तो काम तो तैं जूते खाण के कर रखे…।मझै तो तैं विधवा छोड्डा ना सुहागण…”, बोली सुरेंदरी।

“अब यह तो भाग्य में लिखा था… मुझे ईश्वर ने जिस काम को सौंपा वही तो कर रहा हूँ…”, उसी निश्चिंतता से कहा महेंद्र ने।

इस बार सुरेंदरी ने अपने क्रोध को संयत किया। बोली,

“...अच्छा एक बात बता… तैं को कधी सोचा अक हम किस हालत मैं होंगे। कोण सी जायदाद छोड़ ग्या तू।। जमीन कूबी तेरे भाई दबाऊ बैटठे कम तै कम बंटवारा ई करवा के चला गया होत्ता। उस के सहारे ई बालक पाल लिए होते। मझै ई पता अक

लौंड्डी का ब्याह कुक्कर-कुक्कर करा मैं। भैंस कू बी अपणे लवारु तै मोह हो। उनके बिछड़ने पै रोते रहैं। उन्हैं मुसीबत तै बचाण की पूरी कोसिस करें…अर तैं के करा उनकी लिया ... बिना बाप के बणकै रहगे। वे पता है तझै यू बालक कितने दिन का था जिब तू चुपचाप लिकड़ लिया गौतम बुद्ध बणन…? ना ... तझै क्यूँ पता होगा… तू तो यहाँ ऐस कर रहा । यू तो कुल 28 -दिन का हुया था उस दिन अर वो हिसाब सब लिखा धरा …। किसी बही खाते में नी…। इस भेज्जे में । बुद्धि कितनी ही ठस हो, पर तेरी बेवफाई का पूरा हिसाब दरज है इसमें।"

बाबा महेंद्र ने अपनी आँखें बंद कर ली। न जाने पश्चाताप का मनन कर रहा था, या उसके आने पर उत्पन्न क्रोध की अग्नि को शांत करने की कोशिश कर रहा था।

"इसतै चोक्खा तू मर ई जाता, उसतै मझै तसल्ली तो हो जात्ती अक तू इस दुनिया मैं नी रहा। अपणे कू धोक्खा दे कै, मेरी अर इन बालकू की बद्दुआ लेकै, इन दुखियारे लोग्गू कू झूठ बोलकै... यू जो नाटक रच रक्खया तैं... इसै कुक्कर माफ़ करेगा भगवान , नूं बता तू मझै?", सुरेंदरी ने फिर से उसकी बंद आँखों में प्रश्न दाग दिए।

"यू ही सब करना था तो शादी क्यूँ करी तैं मेरे तै? बता तो सई… मेरी जिन्दगी बर्बाद कर कै के मिल्या तझै? बहोत खुस है ना तू म्हारे बारे मे कधी पता लगाण की बी कोसिस करी तैं अक हम ठीक बी हैं या नहीं? के मिला तझै यू सब करकै। भगवा बाणा अर ये चेल्ले, सब ढोंग है। भगवान अपने परिवार कू पालने तै खुस हो...इस ढोंग तै नी", ज्ञान देते हुए बोली सुरेंदरी।

महेंद्र चुप। उसका धर्म, मोक्ष और आध्यात्म का ज्ञान एक अदना-सी स्त्री के सामने बौना पड़ता दिख रहा था। आँखें खोल ली थी उसने अब। कहने को उसने जवाब देने का यत्न भी किया, पर वह उससे नज़रें मिलाने का साहस नहीं जुटा पा रहा था।

अंततः सुरेंदरी उठ खड़ी हुई, तब महेंद्र ने संकेत से उसे पास बुलाया। वह गई तो उसने भभूत की एक पुड़िया उसे थमा दी, बोला,

"सब कष्ट दूर होंगे तुम्हारे देवी!"

सुरेंदरी के सीने की ज्वाला चरम पर पहुंच गई थी। उसने वह भभूत उसी हवन कुंड में फेंक दी, जिससे उठाई गई थी। बोली, "मझै ना चाहती तेरी या राख की पुडिया… मझै तो बस उन याणे बालकूं की फिकर है, जो तेरी बी उलाद है। यह ढोंग तू ही करता रै !"

"ऐसा नहीं करते देवी… भभूत का फेंकना अपशकुन होता है", निरपेक्ष भाव से कहा महेंद्र ने। पर सुरेंदरी ने मुड़ कर नहीं देखा।

००००

बिना किसी उम्मीद के, हताश होकर लौट आई सुरेंदरी। पन्द्रह साल होने को आये इस घटना को। सऊदी अरब में एयरकंडीशनर इंजीनियर था महेंद्र। उस सस्ते समय में लाखों रूपये कमा कर लाता था हर साल। संयुक्त परिवार बहुत खुशहाल था। गांव में वैसे ही चौधराहट थी। उसके विदेश में होने से इज्ज़त और बढ़ गई थी। हर साल खेती की जमीन में बढ़ोत्तरी हो रही थी। लोग 'घर' बनाते हैं…;पर वह 'मकान' बनाता गया… या कहें हवेली। वह अब उसके जाने के बाद धीरे-धीरे खंडहर-सी हो गई थी क्यूंकि अधिकतर हिस्सा उसके भाइयों के कब्जे में था और वह इतने सम्पन्न नहीं रह गये थे कि उन हिस्सों की सही से देखभाल भी कर सकते… टूटफूट और मरम्मत आदि।

जब साथ था वह, तब सुरेंदरी को शायद ही अलग से कुछ पैसा दिया हो उसने। कहता था, यह तो शादी होकर आई है, दूसरे घर से। हमारा... मां-बाप और भाई-बहनों का प्रेम कैसे समझ सकती है। और सुरेंदरी…? उसे कुछ बुरा नहीं लगता… खुशहाल, हंसता-खेलता परिवार, आंगन में किलकारी मारते बच्चे… बस यहीं तक सीमित थी उसकी जिन्दगी। बाकी था न वो… और भरा पूरा परिवार, संभालने के लिए।

पर कहते हैं न… कि वक्त का कुछ भरोसा नहीं होता। किसी का सगा नहीं होता वह। नहीं इतराना चाहिए वक्त पर। सब कुछ क्षणिक होता है। न जाने उसके साथ यह सब क्यूँ होना था। पर… वास्तविकता तो यही है, और पिछले सात सालों से जूझ रही है वो। हर रोज़, हर पल… तिल-तिल जिन्दगी। अपनी चिंता उतनी नहीं, जितनी तीनों बच्चों की। उनका क्या कसूर था। यह तो पता चले। और मैंने ही क्या किया ऐसा… पूरे मन से समर्पण ही न ? क्या यही दोष है मेरा…, वह सोचती।

कभी कोसती उस घड़ी को जब आख़िरी बार महेंद्र लौटा था सऊदी से। उस समय कुछ परेशान-सा तो था, पर कभी कुछ कहा भी नहीं उसने। न ज्यादा पूछा था सुरेंदरी ने। कभी पूछा भी तो बोलता कि 'तू ना समझ पावेगी'। अब इतना तो कोई भी समझ सके कि घर छोड़कर साधू बनना और बच्चों को बिना किसी सहारे के पालना--- दोनों में से सरल काम कौन है। क्या मुझे सांसारिक जिम्मेदारियों का बेहतर निर्वहन करने से मोक्ष मिलेगा या, महेंद्र को उस ढोंग को रचने, और घर-बार से पलायन करने पर।

सच में वितृष्णा होती, मन खिन्न हो जाता, कुछ भी अच्छा न लगता, पर हर रोज़ फिर से नई ऊर्जा से जुटना पड़ता उसे। कभी भी शायद ही हुआ हो कि भोर की किरणें उसके लिए

कोई नव सन्देश लेकर आई हों।, वह क्षितिज जो लोगों के लिए नई किरणों का खूबसूरत सवेरा होता है, उसके लिए तो वह होता था एक आम दिन… जिजीविषा का। और फिर से एक ही खट-पट। घर, गाय-भैंस के लिए चारा… फिर खेतों में फसल की चिंता, बच्चों की पढाई और उनकी देखभाल। स्त्रियों की कोमल अनुभूतियाँ नहीं मायने रखती उसके लिए। या फिर सारी व्यवहारिकता और दुनियादारी स्त्री के हिस्से में आई है।

कई बार दया भी आती… कि न जाने कौन सी विपदा में होगा महेंद्र। आखिर उसने भी तो अग्नि के समक्ष फेरे लेकर प्रतिज्ञा की थी सुख-दुःख में साथ निभाने की। यदि वह किसी दुःख में है तो उसका धर्म बनता है न हर तरह से साथ देने का। कहाँ-कहाँ नहीं खटखटाया उसने। पुलिस? वो तो खानापूर्ति ही करते हैं… पर उनके भी अनगिनत चक्कर काटे सुरेंदरी ने। निपट अकेले। कभी गोदी में बच्चे को लेकर।

एक दिन गाँव का परचून की दूकान वाला जब दो साधुओं को लेकर घर आया था, जिनको महेंद्र का पता था तो उसे एक अद्भुत और चमत्कार सा प्रतीत हुआ। कांवड़ यात्रा पर निकले वो साधू उसी आश्रम के थे, जिसको महेंद्र संचालित करता था। न जाने किस झोंक में उसने कभी अपने गाँव का जिक्र किया होगा। वो गुजरते हुए इधर आ पहुंचे उस साल, तब सुरेंदरी ने खूब आव भगत की थी उनकी। सब जाना। पर ससुर और भाईयों ने कोई रुचि नहीं ली उसे ढूंढ कर लाने में। बोले, 'क्या पता वही है, या कोई और'। या, 'क्या करेंगे उसका जो साधू हो गया… कोई तंत्र-मंत्र ना कर दे'।

पर, स्त्री का मन कैसे माने। वह अपने भाई के घर गई। भाई को राजी किया किसी तरह से चलने के लिए, उसमें भी भाभी रास्ता रोक कर खड़ी हो गई। बोली, 'यह नहीं जायेंगे… क्या पता साधुओं ने मार दिया मेरे आदमी को, तो मेरा क्या होगा।।'। यहाँ भी रास्ता बंद! बहनोई के पास गई, कि अपने बड़े बेटे को भेज दो साथ। वह बोले, 'वह बाहर है। पता नहीं कब आयेगा। मैं खुद चलूँगा...चलो'। लेकिन बहनोई के साथ जाना, अकेले, और गैर टाइम में, ऐसी परिस्थितियों में...भले ही उम्रदराज़ हों दोनों, पर वह क्या कम अक्षम्य अपराध है एक स्त्री के लिए। अंततः बहन का देवर साथ गया। और बाकी किस्से तो जगजाहिर ही हैं।

आज लगभग दो दशक बीत गये हैं इस घटनाक्रम को। महेंद्र का दरबार फल-फूल रहा है। आश्रम में भक्तों का आवागमन बढ़ता जा रहा है। पैदल...साईकिल।। रिक्शा और मोटरसाइकिल से लेकर मारुती-800 तक में आने वाले श्रद्धालुओं की भीड़ अब स्कार्पियो, फॉरचुनर, ऑडी और बी एम डब्लू में आने वाले भक्तों तक पहुँच गई है। आश्रम एक किले का रूप ले चुका है। और सुरेंदरी…?

सुरेंदरी ने इसी बीच बड़ी बेटी की शादी कर दी थी। पर वह पति घोर शराबी निकला। दिल्ली की किसी फैक्ट्री में दस घंटे की सिलाई की ड्यूटी कर बारह हज़ार रूपये पाती है, तब दो बच्चों का पेट पालती है। जितना हो सकता है, सुरेंदरी भी मदद करती है। बड़ा बेटा खेती करता है, उस जमीन पर जिस पर उसका कानूनी हक है, पर न जाने कितनी पुलिसिया और अदालती कार्रवाही के बाद मिली है वह भी उसे। एक छोटी डेरी भी बना रखी है उसने, जिससे अब अच्छी-खासी आमदनी हो जाती है। छोटा बेटा पढता है ग्यारहवीं में। वह कुशाग्र बुद्धि है। नफरत है उसे अपने पिता से। सुरेंदरी अभी भी बीच-बीच में जाती है आश्रम पर, बड़े बेटे के साथ। न जाने किस उम्मीद में! या फिर अपनी भडास निकालने के लिए। पर वो बच्चा जो अपने बाप के गायब होने के समय अट्ठाईस दिन का था, फिर कभी नहीं गया आश्रम पर। न कोई इरादा है उसका वहां जाने का! कभी कोई आर्थिक या अन्य मदद नहीं मांगी उसने, न कभी महेंद्र ने दी उसे। जो तरक्की की सुरेंदरी ने सिर्फ अपने बूते पर और संघर्ष से, तरक्की क्या भौतिक सुविधाएं जुटा पाई वह...बेहतर मकान, बच्चों की शिक्षा और अच्छा रहन-सहन। पर, पति का साया, और बच्चों पर पिता की छाया… उसका क्या?

आज फिर सुरेंदरी ने भभूत फेंक दी। फिर महेंद्र ने समझाया,

"ऐसा नहीं करते देवी...भभूत का फेंकना अपशकुन होता है!"

क्या महेंद्र की दी हुई भभूत से मन के मैल धुल सकते हैं ? वह हर बार उसे 'सिद्ध भभूत' देने की कोशिश करता है, और सुरेंदरी उसी शिद्दत से भभूत को वहीँ फेंक कर चली आती है ! न जाने क्यूँ जाती है अब भी कभी-कभी वो, और फिर क्यूँ फेंक आती है वह भभूत वहीँ?

स्त्री, और वो भी विवाहिता स्त्री… अपना मन सिर्फ वही जान सकती है। पुरुष उस स्तर को स्पर्श भी नहीं कर सकता ! धर्म, परम्पराएं और सामाजिक कुरीतियों के नाम से जुड़े ढकोसले… यह सब कर्म और सच्चरित्र का स्थान कभी ले सकते हैं भला ! जीवन से पलायन की राह जितनी सरल है, जिजीविषा उतनी ही कठिन। कोई कठोर आवरण का बना होता है, पर सरल रास्ते पर चलता है, और कोई अपनी कोमल भावनाओं से बेपरवाह संघर्षरत होकर परिवार और बच्चों की ढाल बनकर सच्चे अर्थों में जिंदगी जी जाता है। देखिएगा आपके आसपास भी न हो कोई महेंद्र… या सुरेंदरी !

सम्पर्क: 9897741150,

सावी

□ सतीश सरदाना

(लेखक सतीश सरदाना का जोधपुर पाखर, जिला भटिंडा पंजाब में जन्म हुआ। एम बी ए फाइनेंस की शिक्षा प्राप्त की। कविता,लघुकथा, कहानी व विचोरोत्तेजक लेख लिखते हैं। वर्तमान में सर्व हरियाणा ग्रामीण बैंक में प्रबंधक हैं। गुड़गांव में रहते हैं।)

जब से इस घर में आई है सावी, एक दिन सुख का साँस नहीं लिया। रतिया की नाली के किनारे का गाँव, बारिश में छत तक पानी भर जाता, रत्ता टिब्बा पर जाकर शरण लेनी पड़ती। बाकी पूरा साल प्यासा। घर में हाथ से खींचने वाला नलका तक नहीं। दो टोकनी बग़ल में एक चाटी सिर पर उठाकर सावी दो किलोमीटर चहलों के नलके पर जाती। चहलों के गबरू होते लड़के भाबी,भाबी करके नलका गेड़ते। चहलों की बूढ़ी अम्मा खाट पर बैठी गालियाँ बकती। कोसने कोसती। सावी की सात पुश्तों की औरतों के चरित्र पर लांछन लगाती। सावी की कोई प्रतिक्रिया न पाकर,फिर से रहरास साहिब का जोर जोर से पाठ करने लग जाती।

उसका घरवाला सहारण सिंह या शरणी कहने को तो पंद्रह किल्ले का मालिक था। लेकिन सारी जमीन दारू और अफ़ीम के नशे की बदौलत चहलों के पास गिरवी रखी थी। जिसको छुड़ाने के लिए डेढ़ लाख रुपये की दरकार थी जो सावी मरकर और बिककर भी न जुटा सकती थी। शरणी को चहलों ने साढ़े तीन लाख और लेकर उनके पक्ष में रजिस्ट्री करवाने की आफर दे रखी थी। लेकिन सावी की कोई बात न मानने वाला शरणी उसकी ये बात मान गया था और चहलों के बूढ़े सरदार दातार सिंह से हाथ जोड़कर कह दिया था,तेरा दित्ता खावणा है सरदारा, की करिए तिविं रोला करदी। कहन्दी, फाँसी खा मर जूं जो तूं जमीन वेचन दा नाम ल्या ते। सरदारा, मेरा दो रोटी दा जुगाड़ जांदा रहूं। जे ओ सच्चई कर गी। मैनु बुढ़े नु फ़िर किसने कुड़ी देनी।

सच कहता था शरणी जब सावी को ब्याह के लाया था, पेंतालिस साल का था वह। सावी मुश्किल से अठारह की होगी। ऊपर से नशा पत्ती करने की बदनामी। सात बहनों में सबसे छोटी सावी को ब्याह की सबसे ज्यादा जल्दी थी। बाप सिर पर था नहीं। उसका नंबर कब आता, क्या पता। एक जुआ खेला था। शहर से आये एक ईसाई बेलदार के साथ भाग गई थी। जो उसे दो महीने खूब तबीयत से भोगकर जाने कहाँ भाग गया था। पेट में उसका बच्चा लेकर वह वापिस घर आ गयी थी।

उसकी माँ ने पहले तो उसकी खूब कुटाई की। फ़िर उसके गले लगकर रोई। पेट के पाप का पता लगने पर रिश्तेदारों से गुहार लगाई। तब किसी हाइवे ढाबे वाले रिश्तेदार ने हमप्याला, हमनिवाला शरणी का नाम सुझाया। शरणी तो सावी की शक़्ल देखकर ही मुग्ध हो गया। उसके बच्चे को भी अपना नाम देने को तैयार हो गया। लेकिन बच्चा तो बचा ही नहीं। और शरणी समाज के तानों से भी बच गया।

जमीन हाथ आती न देख चहला सरदार का दबाव शरणी पर बढ़ गया। रोज रोज तगादा किया जाने लगा। एक दिन शरणी आधी रात को उठा और सावी को उठाकर बोला, दो दिनां दी रोटी बन्न दे।

सावी ने न पूछा कि किधर जाएगा दो दिन।

कुछ नींद की झोंक थी। कुछ सवाल न करने की आदत। अफीमची और दारूबाज मर्द का क्या पता, गुस्से में दो हाथ ही जड़ दे।

रोटियों पर प्याज़ और अचार रखकर पोटली बना कर उसने परना कंधे पर रख लिया। चादरा बांधकर रबड़ के जूते पहने। एक खेस उठाकर सिर मुँह ढका और सर्द रात में जाने कहाँ चला गया। कई दिन तक कोई ख़बर न लगी उसकी।

सावी ने उसकी कई दिन तक राह तकी। न वो आया न ख़बर आई। इकलौते कमरे को ताला लगाकर वो माँ बहनों के पास आ गई।

सबसे बड़ी बहन को टी.बी. हो गई थी। इसलिए उसकी कमीनी सास ने उसे मायके भेज दिया था। सावी आ गयी थी तो माँ ने उसे बड़ी बहन के साथ जिला सरकारी अस्पताल में इलाज करवाने भेज दिया था। एक्सरे में बहन का सीना ऐसा आया था जैसे छलनी। कमीनी सास उसे सारा दिन खेत में जोते रखती थी। घर आती तो दस भैंसों की रखवाली, दूध निकालना और न्यार फूस।

इतने कामों के बीच उसे रोटी खाने का ध्यान ही न रहता। घरवाला शहर में रहकर वकालत करता। छुट्टी पर घर आता,तो माँ की कुछड़ ही न छोड़ता। माँ उसकी सौ सौ शिकायतें लगाती। गुस्से में आकर वो माँ के सामने उसे दो चार जड़ देता। रात को अकेले में पुचकार लेता। उसके शरीर का स्वामी था वह। मारे या पुचकारे। उसे क्या,वह मशीन बनी रहती।

इस बीच उसे न जाने कब टी.बी. हो गई।

सास ने सब जगह फैला दिया, बीमार लड़की धोखे से हमारे पल्ले बांध दी। ठीक हो जाएगी तो रखेंगे। नहीं तो पढ़ा लिखा वकील लड़का है, तलाक ले लेगा और नई बीवी लाएगा।

एक महीना दवाई खाकर और मंझे से लगकर सेवा करवाने का असर शरीर पर दिखाई देने लगा। थोड़ी सेहत संभली तो उसको घर की चिंता हुई। सास ने ताकीद कर दी बग़ैर पूरी तरह ठीक हुए न आए।

एक दिन जब सावी चाय पानी लेने किराये के कमरे पर गई थी बडी का पति आया। दो किलो सेब दे गया, पाँच सौ रुपये भी।

बड़ी बड़ी खुश थी उस दिन। उसके पति को परवाह है उसकी। सास के जुल्म और पति की मार सब भूल गई। पति ने अनुरोध किया था कि इलाज बीच में न छोड़े। चाहे छः महीने लगें या साल।

पति की आज्ञा को बाबा जी का हुक्म मानकर वो दवाई नियम से खाने लगी थी।

अब छः माह पूरे होने को थे। वह शरीर में तंदरुस्ती महसूस करने लगी थी। सावी सोचती थी कि विधाता, नसीब लिखने वाला सबसे बड़ा लेखक उनके इतने भी खिलाफ़ नहीं है। उनकी ही श्रद्धा अधूरी है जो उन्हें बार बार दुःख देखना पड़ता है।

लेकिन होता यह है कि जैसे ही ईश्वर की परमसत्ता पर विश्वास जमना शुरू होता है वैसे ही शैतान अपना खेल दिखा देता है।

बड़ी के पति ने दूसरी शादी कर ली है,यह ख़बर जहर बुझे खंजर की तरह उसके सीने में भोंक दी गयी थी। बड़ी और सावी एक दूसरे के गले लगकर खूब रोई थी। उनकी एक शहर में पढ़ी लिखी चाची ने पता लगाया था कि उसके पति ने बाकायदा कानूनन राजीनामे से तलाक़ लिया था, तलाकनामे पर बड़ी के दस्तख़त थे। बड़ी ने छोटी को बताया उस दिन जब पति आया था,उसने कोर्ट के कागजों पर यह कहके सही करवाए थे कि शहर में उसके लिए मकान खरीद रहा है। गाँव में वो मिट्टी से मिट्टी होई रहती है और अपनी सेहत का ख़्याल नहीं रखती है।

एक तरह से अच्छा हुआ था कि उसने ख़ुद रिश्ता तोड़ दिया था,लेकिन धोखा देकर तोड़ने की बजाय मर्द बनकर सामने आकर कहता कि तेरा मेरा रिश्ता शरीर का था, तेरे पास कंडम शरीर बचा है, उससे मेरा काम नहीं चलता। मुझे नई देह का इन्तजाम करना है। तू मेरे रास्ते से हट जा। वह खुशी खुशी हट जाती। क्योंकि उसने प्रेम पाने के लिए शरीर दिया था। उसने शरीर पाने के लिए प्रेम किया था। वह उन कोसी कोसी चिकनी रातों की याद में जिंदगी गुजार देती। यह धोखे की फांस उसके सीने में तो न चुभती।

इस तलाक़ और दूसरी शादी की ख़बर ने बड़ी की सेहत पर बड़ा बुरा असर डाला। दवाई न खाती तो न खाती। सोई रहती तो सोई रहती। रोती रहती। खाना न खाने की आदत तो शुरू से ही थी। उसकी सेहत गिरने लगी तो फिर न संभली। एक दिन हाय हाय करती उठी। साँस न ली जा रही थी। इमरजेंसी में ले जाते इससे पहले ही ख़त्म हो गई।

बहन के मरने के बाद सावी के जिम्मे शहर में कोई काम न रहा। माँ के घर लौट कर कुछ दिन बावलों की तरह फिरती रही। एक दिन ससुराल वाले गाँव से कोई फ़ेरी वाला आया।

रोटी खाने के लिए अचार,मूली या लस्सी में से कुछ भी जो गृहस्थी में सुलभ हो जाये माँगने लगा। चाटी में गिलास डाला तो नीचे जा लगा। लेकिन आधा गिलास लस्सी फिर भी हाथ आ गई। तवे पर थोड़ा जीरा गरम कर थोड़ा कोसा पानी मिला गिलास भर दिया। देने पहुँची तो फेरी वाला गौर से देखता मिला। उसे बड़ा गुस्सा आया। कुछ कहती इससे पहले ही बोल पड़ा।

"जे में भुलदा नहीं तां तूं शक नहीं शरणी दी तिंवी ता नहीं।
"

उसने हाँ में सिर हिलाया।

तुहाड़ी जमीन तां चहलां दे गहने धरि। शरणी बाई बड़ा भला बंदा। जे अमली न हुँदा तू राज करदी राज,वो एक घूँट लस्सी का भर के बोला था।

मैं ता हुन वी राज करदी राज!,उसे पति की बुराई अच्छी न लगी थी। बाकी राज तो जैसा कर रही थी उसका दिल ही जानता था।

फ़ेरी वाला रहस्यमयी आवाज़ बनाते हुए बोला,"मुझे शरणी मिला था। बहुत देर बातें की हमने। तुझे बहुत याद करता है। "

सावी चौंक पड़ी। इतने में माँ की आवाज़ पड़ी। भैंस खुल गई थी,भागी जा रही थी।

उसके पीछे जाना जरूरी था।

बाद में उसने माँ से फेरीवाले की बात का जिक्र किया।

माँ हँसी और बोली, साडे खसम दे कौन यार,धोबी तेली और मनिहार।

फ़िर सीरियस होती हुई बोली,एक फेरा ससुराल के गाँव का लगा ले। बहुत दिन तक डेरा सुनसान न रहना चाहिए।

उसे भी फिक्र होने लगी।

अगले दिन बस पर सवार होकर घर पहुंची। घर पर किसी और का परिवार बस रहा था। उनका सामान एक कोठड़ी में धूल खा रहा था। पता चला कि चहलों के बुज़ुर्गों ने नालिश करवाई है। वो अपना सामान बैलगाड़ी पर लदवा चुपचाप चली आयी। उसे इस हाल में वापिस आया देखकर माँ का दिल भर आया और वो रोने लगी,मेरी लड़कियों के भाग्य में सुख नहीं है क्या सच्चे पातशाह!!

अगले दिन सावी एक निश्चय करके उठी कि वह कोर्ट जाएगी और मुक़द्दमा करेगी। बगैर लड़े हार नहीं मानेगी।

संपर्क : —9896246839

डायरी

शब्दों की चुप्पी

□ निंदर घुगियाणवी

(निंदर घुगियाणवी पंजाबी के लेखक हैं। 'जब मैं जज का अर्दली था' घुगियाणवी का आत्मवृत साहित्य की दुनिया में खूब मकबूल हुआ। इसमें घुगियाणवी ने भारतीय न्याय-व्यवस्था के बहुत से अनछुए पहलुओं को उदघाटित किया था। इसके बाद 'काले कोट का दर्द' व अनेक रचनाएं प्रकाश में आई। घुगियाणवी पंजाबी लोक गायक जमला जट्ट के शागिर्द हैं। उनसे उन्होंने लोक वाद्य यंत्र तुंबी बजाना व गाना सीखा। वर्तमान में वे पंजाब कला परिषद के प्रबन्धकीय अधिकारी हैं - सं।)

सारे हस्पतालों में से यही जवाब मिला था कि अब घर ले जा कर सेवा करो इनकी, बस भगवान भरोसे हैं आपके पिता जी। और कोई ज़ोर न चलता देख घर ला पाये। हम घर के सदस्यों को अच्छी तरह से पता चल चुका था कि पिता जी अब ठीक नहीं हो पायेंगे। नामुराद बिमारी कैंसर की कहां जीने देती है आदमी को? अंदर ही अंदर यहीं गम खाते हुए, उतरे हुए चेहरे लेकर घूम रहे थे और घर का कोई सदस्य आपस में बात भी न कर रहा था। बच्चे अलग सहमे-सहमे से रहने लगे थे। स्कूल जाते दिल न लगाते और जल्दी घर आ जाते। हमारी मां को पूछते कि दादी हमारे दादा कब ठीक होंगे? होंगे कि नहीं ठीक, बता दो दादी? मां बच्चों से अपने आंसू छुपा लेती और बाबा नानक की फोटो की ओर हाथ जोड़ कर कहती बाबा जी के आगे अरदास करो पुत्तर, आपके दादा ठीक हो जायेंगे...।"

चंडीगढ़ मेरी बड़ी बूआ सीता राणी मिलने आई। पलंग पर निढ़ाल पड़े अपने छोटे भाई, (जिसको वह उठा-उठा कर खेलाया करती थी और अपने हाथों से पाला-पोसा था) की ओर देख कर बोली, "ओए बिल्लू, उठ पलंग से, तुझे अच्छे-भले को क्या हो गया बे? उठ पलंग से शेर बन...।" पिता जी उठ तो न सके, अपनी बहन की ओर देखते उनके आंसू निकल पड़े। बहन ने अपने हाथों से अपने भाई के आंसू पोंछे। थोड़ी देर बाद बूआ इधर-उधर हो गयी तो मैं पिता जी के पास बैठ गया। बोलते-बोलते मैं तल्ख़ हो गया, "पापा, तुम्हें बूआ के सामने रोने की क्या जरूरत थी? वह समझती होगी, कि कहीं मेरे भाई की सेवा संभाल नहीं करते...तभी रोता होगा यह भाई।" पिता जी कुछ ना बोले। मेरी ओर देखते रहे और उसी पल ही उनके आंसू फिर बह पड़े। मैं कुछ भी बोल न सका। दो शब्द जैसे पैर जमा कर एक ही जगह रूक गये हों। शब्दों की चुप्पी सारी परिस्थिति को स्वयं ब्यान कर जाती थी। पिता के पास से उठ कर अपने चौबारे की ओर चढ़ गया तां कि कई दिनों से भरा हुआ मन अच्छे से हल्का तो कर लूं।

मनुष्य के जीवन में बहुत बार ऐसे पल आते रहते हैं जब सिर्फ़ और सिर्फ़ खामोशी ही साथ देती है। शब्द रूठ कर कहीं दूर चले जाते हैं। तब आदमी करे तो क्या करे! ऐसे निराशामय समय में मैं खुद को अनेकों सवाल करता रहता पर जवाब किसी सवाल का ना दे सकता था। अजीब तरह के पल थे। ऐसे संकटग्रस्त पलों को भूल जाना अपने आप को भूल जाने के बराबर होता है क्योंकि खुशी के पल तो मनुष्य के जीवन में हर पल ही डुबकी लगाते रहते हैं! बाकी हर छोटी से छोटी और बड़ी बात को शिद्दत के साथ अहसास करने की होती है, कोई करता है, कोई नहीं करता है। जीवन की तल्ख़ हकीकतों ने मुझे अपने पलों के बारे में ऐसा सोचने के लिये मज़बूर कर दिया है।

संपर्क: 94174-21700

स्मृति-शेष

ये सफर है तीरगी से रोशनी तक दोस्तो!

□ बलबीर राठी

(16 अक्तूबर 2018 को बलबीर सिंह राठी का देहावसान हो गया। बलबीर सिंह राठी का जन्म अप्रैल 1933 में रोहतक जिले के लाखन माजरा गांव में हुआ था। अंग्रेजी साहित्य की उच्च शिक्षा प्राप्त की। वे रोहतक के जाट कालेज में अंग्रेजी के प्राध्यापक रहे। हरियाणा के विभिन्न राजकीय महाविद्यालयों में लंबे समय तक प्राचार्य रहे। हरियाणा की साहित्यिक-सांस्कृतिक गतिविधियों में निरंतर रुचि लेते रहे। राठी साहब उच्च कोटि के शायर थे। देस हरियाणा की तरफ से विनम्र श्रद्धांजलि। पाठकों के लिए प्रस्तुत है उनकी रचना -यात्रा की एक झलक - सं।)

मैं अपनी ही रचनाओं की भूमिका लिखने के पक्ष में नहीं हूं। इससे अपनी रचनाओं के अधूरेपन का अहसास होता है, जिसे दूसरे तरीकों से पूरा करने के लिए भूमिका लिखी जाए और उसके बहाने उन रचनाओं की हल्की-फुल्की व्याख्या कर दी जाए और उनके अर्थ स्पष्ट करने का प्रयास किया जाए। इससे यह संकेत मिलता है कि रचनाकार अपनी रचनाओं में अपने विचार व्यक्त करने में असफल रहा। बहुत से रचनाकार भूमिका के बहाने कुछ और बात कहते हैं। मैं भी इसलिए लिख रहा हूं कि मुझे रचनाओं को प्रकाशित करवाने की आवश्यकता क्यों पड़ी।

दरअसल, जब मैं स्कूल में पढ़ता था तो हिन्दी में कविताएं और कहानियां भी लिखता था। मैंने तो छुट्टियों में एक उपन्यास भी लिख डाला था, जो बाद में मुंशी प्रेमचंद के उपन्यास का चर्बा निकला, यहां तक कि पात्रों के नाम भी चक्रधर, गंगाधर इत्यादि रखे थे, हरियाणा में ऐसे नाम नहीं रखे जाते। उन दिनों की एक कविता की दो पंक्तियां आज भी याद हैं-

मुझे अपनाने दो संसार,
भले हों संकट गले का हार।

दसवीं कक्षा पास करने के बाद मैंने जीएमएन कालेज, अम्बाला छावनी में दाखिला ले लिया। इस कालेज में मेरे साथ दो छोटी-छोटी घटनाएं घटी कि मैं हिन्दी में कविताएं लिखना छोड़ कर उर्दू में ग़ज़लें, नज़्में लिखने लगा। हमारे कालेज के प्राचार्य श्री जसवंत राय लंबे, सुंदर और अत्यंत आकर्षक व्यक्तित्व के धनी थे। एक बार लड़कों ने हड़ताल कर दी और नारे लगाने लगे। उन्होंने सब छात्र-छात्राओं को एक जगह बिठा दिया और कालेज-स्टाफ की छुट्टी कर दी। फिर उन्होंने हमें दो नज़्में सुनाईं, पहली फ़ैज अहमद फ़ैज की- 'मुझ से पहली सी मुहब्बत मिरी महबूब न मांग', दूसरी साहिर लधियानवी की 'कभी-कभी', दोनों नज़्में सुना कर उन्होंने हमें हमारी भी छुट्टी कर दी और हड़ताल टूट गई। उनका नज़्में सुनाने का अंदाज इतना मनमोहक था कि मैं बयान नहीं कर सकता। मैंने इतने प्रभावी अंदाज में कभी कोई रचना नहीं सुनी। बहुत बाद में मैंने साहिर लुधियानवी की जबानी उनकी नज़्म 'कभी-कभी' और फ़ैज अहमद फ़ैज की जबानी उनकी नज़्म, 'मुझसे पहली सी मुहब्बत मिरी महबूब मांग' भी सुनी, लेकिन उनके अंदाज में वो जादू नहीं था जो प्रिंसीपल जसवंत राय के अंदाज में था। मैंने मेरे पास बैठे साथी से उन नज़्मों के बारे पूछा। उसने उन शायरों के साथ उन पुस्तकों के भी नाम बता दिए, जिनमें वे मिल सकती थी। मैं कालेज में सीधा उर्दू की किताबों की उस दुकान पर पहुंचा, जिसमें उर्दू की किताबें किराये पर भी मिलती थी और मोल भी। लेकिन मैंने दोनों किताबें ख़रीद ली और रात-भर पढ़ता रहा और कई नज़्में जबानी याद भी कर ली। उसके बाद तो मैंने फ़िराक गोरखपुरी, मजाज़ लखनवी इत्यादि बहुत से प्रगतिशील शायरों के कलाम पढ़ डाले। इनके पढ़ने से मेरी जनवादी सोच में भी निखार आया और उर्दू शायरी से मेरा लगाव बढ़ गया। दूसरी घटना भी उसी दिन से संबंधित है। जिस साथी ने मुझे उन पुस्तकों के नाम बताए थे, उसने दो-तीन दिन पश्चात् मुझसे पूछा कि मैंने वो किताबें पढ़ी? कैसी लगी? 'बहुत ही अच्छी लगी' मैंने जवाब दिया। इसके बाद हम दोनों में घनिष्ठता बढ़ गई। एक दिन प्रयोगशाला से निकलते हुए उसने कहा, मैं भी नज़्में-ग़ज़लें कहता हूं, सुनोगे? फिर उसने अपनी नज़्म सुनाई और दो ग़ज़लें। अच्छी लगीं। वो ज़ार अम्बालवी से इसलाह करवाता था। उसने मुझे बताया कि उसके उस्ताद ने इनको ठीक कर रखा है। मैंने कहा ऐसी ग़ज़लें तो मैं भी लिख सकता हूं। उसने मुझे थोड़ा

डराया कि ग़ज़लें लिखना इतना आसान नहीं है। मैंने रात में बैठकर मज़ाक-मज़ाक में 25-25 शे'अरों की दो ग़ज़लें कह डाली। अगले दिन उसे दिखाई। उसने वे ग़ज़लें मुझसे ले ली और शायद अपने उस्ताद को भी दिखाई हों, क्योंकि अगले दिन उसने कहा कि उस्ताद जी बुला रहे हैं, चलो उनको तुम्हारी ग़ज़लें दिखा दें। मैंने कह दिया कि मैंने कोई उस्ताद नहीं बनाना। ये उस्ताद लोग हमें अपने विचार व्यक्त नहीं करने देंगे, बल्कि अपने विचार थोप देंगे। मैंने शायरी केवल शायरी के लिए नहीं करनी, सामाजिक सरोकारों के लिए करनी है। ये बात तो यहीं खत्म हो गई, परन्तु इन दो छोटी-छोटी बातों ने मुझे हिन्दी-कविता से निकाल कर उर्दू-शायरी में ला खड़ा किया। मैंने उर्दू में शायरी करना शुरू कर दिया। कहानियां तो हिन्दी में लिखता रहा, परन्तु शायरी उर्दू में। उर्दू-लिपि में मुझे लिखने में सुविधा भी होती थी।

दो साल बाद मैंने राजकीय महाविद्यालय, रोपड़ में दाखिला ले लिया। तब मुझे ग़ज़लें-नज़्में कहने के साथ सुनाने का भी शौक़ था। प्राणी-विज्ञान के थोड़े ही विद्यार्थी होते थे। जल्दी ही घुल-मिल गए। हम सब होस्टल में रहते थे, इसलिए शाम को सैर करने के बाद सतलुज के किनारे लगभग रोज़ ही एक छोटी-सी महफ़िल जम जाती, जिसमें एक-दो गाने वाले थे, वे गाने सुनाते, अंत में एक परिपक्व कवि की तरह मैं ग़ज़लें-नज़्में सुनाता और मुझसे भी और साहित्य से अनजान साथी वाह-वाह करते। रोपड़ कालेज में प्रो. अमीर चन्द बहार हमें अंग्रेजी पढ़ाते थे। बहार साहिब बड़े सुलझे हुए शायर थे और बहुत ही प्रसिद्ध शायर जनाब तलोक चन्द महरूम के शागिर्द थे। उन्होंने अंग्रेजी की कई प्रसिद्ध कविताओं का मज़नूम (पद्य) अनुवाद कर रखा था। एक दिन हम उनके कमरे में ही उनसे वह अनुवाद सुन रहे थे कि मेरे एक साथी ने कह दिया कि राठी भी उर्दू का बहुत अच्छा शायर है, वो बड़े खुश हुए और मुझसे मेरी कई रचनाएं सुनीं, जब हम चलने लगे तो मुझे उन्होंने रोक लिया और पूछा तुम्हारा उस्ताद कौन है? मैंने कहा, 'कोई नहीं! और बनाना भी नहीं, सर' 'कोई बात नहीं' मैं अरूज़ियात की दो किताबें लिख देता हूं। हमारे कालेज के पुस्तकालय में मिल जाएंगी, उन्हें पढ़ो, मुझे खुशी है कि एक विज्ञान का होनहार छात्र उर्दू शायरी में इतनी रूचि लेता है। मुझे उम्मीद है कि तुम एक दिन बड़े शायर बनोगे।' मैंने वे दोनों पुस्तकें लेकर पढ़ीं। मुझे पहली बार ये अहसास हुआ कि उर्दू कविता संगीत का टुकड़ा या भावनाओं की अभिव्यक्ति ही नहीं, गणित का सवाल भी है। अगर मुझे उर्दू शायरी से इतना लगाव न होता तो मैं वे पुस्तकें पढ़ना छोड़ देता और प्राणी-शास्त्र और वनस्पति-शास्त्र को और लग्न से पढ़ता, लेकिन मैं शायर भी बनना चाहता था और ये ज़िद्द भी निभानी थी कि कोई उस्ताद नहीं बनाना। मैंने वे पुस्तकें दिल लगाकर पढ़ीं और उनमें से जो आसान छनद थे, उनको जबानी याद किया और पहली छन्दबद्ध ग़ज़ल कही। उसके कुछ शे'अर नीचे लिखे हैं-

दुश्मनी तुम ने की दुश्मनी की तरह
दोस्ती भी करो दोस्ती की तरह
आज भी धड़कनें तुम से मानूस हैं
यूं न देखो मुझे अजनबी की तरह
आदमी कब मिले सिर्फ चेहरे मिले
काश, मिलता कोई आदमी की तरह।

मैंने बहार साहब को जब ग़ज़ल सुनाई तो बहुत खुश हुए। परन्तु उन्होंने एक शब्द 'ज़हर' के ठीक उच्चारण के बारे में भी बताया कि इसका 'ह' हलन्त होता है। मैंने इतनी लंबी बातचीत ये स्पष्ट करने के लिए करनी पड़ी कि मैं ग़ज़लें-नज़्में तो कहता रहा, परन्तु उन्हें छोटी-मोटी गोष्ठियों के सिवा सुनाने से कतराने लगे। धीरे-धीरे एक स्थायी झिझक मेरी आदत बन गई। उर्दू ग़ज़लों-नज़्मों के संदर्भ में मेरा आत्मविश्वास कम हो गया है। हम हरियाणा के लोगों का उर्दू के कुछ शब्दों का उच्चारण दोषपूर्ण होता है। मैंने पुस्तकों में पढ़कर, ध्यान से शायरी सुनकर सब त्रुटियों को दूर करने का भरसक प्रयत्न किया और मेरी नज़्में, ग़ज़लें इस कदर निखर गई कि उनकी प्रसिद्धि के लिए मेरी उदासीनता बनी रही। आज भी बनी हुई है यद्यपि रचनाओं पर मुझे अब पूर्ण विश्वास है कि वे पूरी तरह त्रुटिरहित हैं।

मैंने अपने भाषणों में कभी अपनी एक भी पंक्ति उद्धृत नहीं की, किसी सभा में, किसी समूह में ये डींग नहीं मारी कि मैं कोई साहित्यकार या शायर हूं। किस समाचार पत्र या साहित्यिक पत्रिकाओं में कोई रचना नहीं भेजी। मुझे सिवाए मेरे कुछ साथियों के किसी को ये गुमान भी नहीं था कि मैं शायरी भी करता हूं। मुझे मेरे इस खेल से मेरे एक प्रशंसक मित्र, डा. हरिवंश अनेजा 'जमाल कायमी' ने निकाला। उन्हें शायद मेरा कलाम इतना पसंद आया और उसे इतनी उच्चकोटि का समझा कि मुझे और मेरे कलाम को प्रसिद्धि दिलाने का बीड़ा भी उठा लिया। सबसे पहले उन्होंने मेरी नज़्में-ग़ज़लें रोहतक शहर की साप्ताहिक और मासिक पत्रिकाओं में प्रकाशनार्थ भेजीं। फिर किसी जगह शहर में कोई गोष्ठी होती, उसमें मुझे अपनी साइकिल पर बिठा कर ले जाते। उन दिनों मैं जाट कालेज, रोहतक में पढ़ाता था। मुझे याद है रोहतक में आकर मैं जिस पहली गोष्ठी में शामिल हुआ, उसमें कश्मीरी लाल ज़ाकिर, आक़िल लाहोरी, जमाल क़ायमी के इलावा रोहतक के कुछ हिन्दी-उर्दू-पंजाबी कविगण उपस्थित थे। वहां मेरी ग़ज़ल को सराहा गया। फिर उन्होंने पत्रकारों को एक कवि-सम्मेलन के लिए मनाया, जिसमें मुझे-

ख़सूसी के तौर पर बुलाया गया। रोहतक में मेरी प्रसिद्धि के लिए उन्होंने अपने और मेरे कलाम की चयनित रचनाओं की एक पुस्तक 'जज़्बात' के नाम से प्रकाशित करवाई, जिसमें मेरे परिचय में जनाब बिसमिल सईदी की तरज़ पर एक शे'अर भी लिख दिया-

जनाब बिसमिल सईदी का शे'अर-
यहां कौन दिल्ली में शायर हैं 'बिसमिल'
जगन्नाथ आजाद है और मैं हूं।
जनाब जमाल क़ायमी-
दो ही तो शायर हैं रोहतक में 'जमाल'
हजरते बलबीर राठी और मैं।

(जमाल साहब का कहना है कि उन्होंने जनाब बिसमिल सईदी का शे'अर नहीं पढ़ा था)

इस पुस्तक के प्रकाश में आने से मेरा नाम रोहतक में एक शायर के नाते लिया जाने लगा। डॉ. जमाल क़ायमी को दिल्ली में एक हायर सैकेण्डरी स्कूल में संस्कृत के लैक्चरर की ज़गह मिल गई। हमारी रोजाना की मुलाक़ातें सप्ताह के अंत में होने लगी। वहां भी उन्होंने अपना मिशन जारी रखा। मेरी ग़ज़लें भिन्न-भिन्न उर्दू रसालों में प्रकाशित होने लगी। मुझे तब पता चलता जब वह रिसाला मेरे पते पर मुझे मिलता। मेरे एक मित्र राजेन्द्र 'बानी' दिल्ली से एक माहनामा 'तलाश' दत्त-भारती के साथ निकालते थे। उनका हुक्म था कि जब मैं उनके पास उनसे मिलने जाऊं, तो अपनी ग़ज़लों की डायरी लेता आऊं। 'बानी' साहब का ज़दीद उर्दू शायरी में बड़ा नाम था। डॉ. गोपी चन्द नारंग उनके प्रशंसकों में से थे। उनके माहनामा में ग़ज़ल का छपना स्वयं में एक सनद थी। बानी साहब के साथियों में मखमूर सईदी, राजनारायण राज़, अमीक़ हनफी, सलाम मछली सहरी थे। वो अपनी गोष्ठियों में मुझे बुला लेते थे, परन्तु मेरी जनवादी सोच से उन साथियों की सोच मेल तो नहीं खाती थी, लेकिन उनकी वजह से मेरे कलाम की तारीफ़ करते थे। उधर जमाल साहब के शायर दोस्तों का भी एक समूह था, वो जिस भी कवि-सम्मेलन में जाते, तो उनके साथ मेरा होना अनिवार्य हो गया था। जनाब नरेश कुमार 'शाद' से उन्हीं लोगों के जरिये गहरे रिश्ते जुड़ गये। जमाल साहब ने मेरी ग़ज़लें रेडियो 'सीलोन' भेजनी आरंभ कर दी। एक दिन मैं कालेज में पहुंचा तो साथी प्राध्यापकों ने घेर लिया बधाई तो दी ही, मिठाई खिलाने की जिद्द भी की। उन्होंने बताया कि मेरी ग़ज़ल सीलोन रेडियो से प्रसारित हुई थी। दूसरों से भी मुझे बड़ा शायर मनवाने की उनकी जिद्द भी अजीब थी। एक बार मुरादनगर मुशायरे में हम सब गए। ये सीधे आयोजकों के पास पहुंचे और उन्हें इस बात की बधाई दी कि एक महान उर्दू शायर बलबीर राठी मुशायरे में शामिल हो रहे हैं। उनकी इज्जत अफ़ज़ाई की जानी चाहिए। उन्होंने मुझे सदरे मुशायरा बना दिया। मुझे इस तरह के अदब-क़ायदे नहीं आते थे। उन लोगों से ही पूछ कर किसी तरह अपनी इज्जत बचाई। जमाल साहब की की कोशिशों से मेरा उर्दू-जगत् में एक मुकाम हो गया। प्रो. रामनाथ चसवाल आबिद आलमी, बिमल कृष्ण अश्क, डॉ. कुंदन अरावली जब रोहतक आए तो सबसे पहले मुझसे ही मिले और रोहतक में शायरों का एक खासा बड़ा हलका बन गया, जिसमें आबिद आलमी, कुंदन अरावली, बिमल कृष्ण अश्क, वेद असर, पूर्ण कुमार होश और कभी-कभार जमाल क़ायमी भी इस हलके में आ शामिल होते थे। इसी दौरान मेरी पहली किताब 'क़तरा-क़तरा' पर हरियाणा के भाषा-विभाग ने पहला ईनाम दे दिया। एक तरह के उर्दू-साहित्य की गहमा-गहमी का दौर रहा। फिर अलग-अलग कारणों से ये हलका बिखर गया और मैं फिर अपने खोल में दुबक गया। सरकारी कवि-सम्मेलनों में भाग लेने के अतिरिक्त सारी साहित्यिक गतिविधियां लगभग थम गई। हां कभी-कभार मैं और आबिद आलमी लंबी बैठकें अवश्य कर लेते थे।

धीरे-धीरे उर्दू जानने वालों की संख्या में निरन्तर कमी होने लगी और 'उर्दू-अकादमी' बनने के बावजूद मुशायरे आयोजित करना कम से कम सिर्फ हरियाणा के शायरों के साथ कठिन हो गया। जो श्रोतागण जुड़ते थे वे फ़ारसीनुमा उर्दू नहीं समझते थें। मुझे फ़ारसी नहीं आती थी इसलिए मेरी रचनाएं उनकी समझ में आ जाती थी। परन्तु मुशायरे और गोष्ठियों के एक-आध शहर में केंद्र रह गए। इसलिए मेरी ख़ामोशी लंबी होती चली गई। 1992-93 में मेरी पुस्तक 'लहर-लहर' (ग़ज़ल संग्रह) को उर्दू अकादमी हरियाणा ने प्रथम पुरस्कार प्रदान कर दिया, परन्तु किसी ने ध्यान नहीं दिया। लोगों को उर्दू से कोई लगाव नहीं रहा, इसलिए इस जबान का महत्व नहीं रह गया। हम कुछ लोगों ने मिलकर 1981 में 'जनवादी लेखक संघ' हरियाणा की स्थापना की तो इसकी गतिविधियों से लोग जुड़ने लगे और उसके वार्षिक आयोजन काफ़ी आकर्षक होने लगे। फिर कई जगह 'जिला जनवादी लेखक संघ' स्थापित हुए। हमने जींद जिला में 'जनवादी लेखक संघ' की इकाई स्थापित कर दी। हिन्दी ग़ज़ल का चलन बढ़ने लगा और 'जनवादी लेखक संघ' के कवि-सम्मेलनों में हिन्दी ग़ज़ल ही अधिकतर सुनने को मिलती। मुझे ये महसूस होने लगा कि मेरी ग़ज़लों के प्रशंसकों की संख्या बढ़ने लगी है। बहुत से युवा लेखक जब मुझसे मेरी ग़ज़ल मांगते तो लिपि की समस्या खड़ी हो जाती। जनाब महावीर सिंह 'दुखी' मेरे कुछ ज्यादा ही प्रशंसक हैं। उन्होंने डरते-डरते से मुझसे कहा कि 'आप की

रचनाएं तो बहुत ही अच्छी हैं, परन्तु उर्दू जानने वाले तो नाम-भर को हैं। यदि आप मुझे आज्ञा दें तो आप की रचनाओं को देवनागरी लिपि में रूपांतरित करने का गौरव प्राप्त कर लूं?' उसके बाद इस काम के लिए कुछ इतनी लगन से जुटे कि मेरी आधी रचनाओं को देवनागरी में रूपांतरित कर दिया है। मुझे लगता है कि जमाल साहब के बाद 'दुखी' साहब ने मेरी रचनाओं के प्रचार-प्रसार का बीड़ा उठा लिया है। परन्तु मुझे मेरे ख़ौल से पूरी तरह निकालने में डॉ. सुभाष चन्द्र, रीडर, हिन्दी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय और डॉ. ओम प्रकाश करुणेश का सबसे अधिक योगदान है। दोनों हिन्दी साहित्य के बहुत बड़े विद्वान हैं और मैं उनके प्रशंसकों में से हूं। उन्होंने कहा कि 'लोगों से अपनी रचनाओं को छुपाए रखने से आप साहित्य की क्या सेवा कर रहे हैं?' अपनी रचनाओं को प्रकाश में आने दीजिए, इन्हें पाठकों तक पहुंचाइये। मैं भी शिद्दत से महसूस कर रहा हूं कि मुझे अपनी रचनाओं को अपने प्रशंसकों से और अपने बच्चों से छुपा कर रखने का कोई हक नहीं। यूं भी मेरी रचनाओं को श्रोताओं से अधिक पाठकों की आवश्यकता है।

(बलबीर सिंह राठी की चुनिंदा ग़ज़लें व नज़्में की भूमिका से)

राठी साहिब के साथ आधी सदी

□ वी.बी.अबरोल

(प्रोफेसर वी बी अबरोल राजस्थान विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त करके जाट कालेज, रोहतक में अंग्रेजी के प्राध्यापक नियुक्त हुए। महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय में चले शिक्षक आंदोलन में सक्रिय भागीदारी के कारण नौकरी गंवाई। बाद में दयाल सिंह कालेज, करनाल में अंग्रेजी के प्राध्यापक नियुक्त हुए और वहीं से सेवानिवृत हुए। हरियाणा के जन ज्ञान-विज्ञान आंदोलन में सक्रिय तौर पर हिस्सा ले रहे हैं। वी बी अबरोल का बलबीर सिंह राठी के साथ पचास वर्ष का साथ रहा। प्रस्तुत है एक आत्मीय संस्मरण - सं।)

मैं रोहतक के मशहूर ऑल इंडिया जाट हीरोज़ मेमोरियल कॉलेज में 29 जुलाई 1968 को बतौर लेक्चरर इन इंगलिश अपनी जोइनिंग रिपोर्ट देने के लिए प्रिंसिपल चौ. हुकम सिंह (बाद में कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में रजिस्ट्रार भी रहे) के कार्यालय में पहुंचा कि पीछे-पीछे एक बहुत ही खूबसूरत, चश्मा लगाए हुए 35-36 साल के व्यक्ति ने भी प्रवेश किया। उनको बैठने का इशारा करते हुए प्रिंसिपल साहिब ने मेरी जोइनिंग रिपोर्ट पर नज़र डाली और फिर उन सज्जन की तरफ देखते हुए बोले: ''बलबीर सिंह, यह आपके डिपार्टमेन्ट में नए लेक्चरर आए हैं। इनको ले जाकर इनकी क्लास में इंट्रोड्यूस कर आओ।'' सज्जन ने मुस्कराते हुए कहा, ''यह तो खुद इतने छोटे लगते हैं कि मुझे आश्चर्य हुआ कि इस स्टूडेन्ट की आपके सामने कुर्सी पर बैठने की हिम्मत कैसे हुई।'' इसके बाद मुझसे मुखातिब होते हुए बोले, ''चलिए।''

प्रिंसिपल साहिब के दफ्तर से क्लास रूम तक पहुंचने में जो दो एक मिनट का समय लगा, उसमें उन्होंने अपना परिचय दिया, ''मैं बलबीर सिंह राठी हूँ। आपके ही डिपार्टमेन्ट में पढ़ाता हूँ। अस्थाना साहिब (डिपार्टमेन्ट के हैड) ने बताया था कि आपको फलानी क्लास का फलाना सेक्शन मिला है।'' फिर उन्होंने मेरा परिचय पूछा। मैने अपना नाम बताते हुए कहा कि अभी एक महीना पहले ही राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर से एम.ए. किया है। इतनी देर में हम क्लास तक पहुंच गए। राठी साहिब मुझे साथ लेकर अन्दर गए तो सब विद्यार्थी उठकर खड़े हो गए। उनको बैठने के लिए कह कर उन्होंने मेरा परिचय दिया, ''यह आपके नए टीचर हैं। इनकी शक्ल देख कर यह न समझ लेना कि यह हमें क्या पढ़ाएगा। इन्होंने देश के मशहूर राजस्थान विश्वविद्यालय से एम.ए. किया है। बहुत अच्छे डिबेटर रहे हैं।'' और न जाने क्या क्या। वह तो पांच मिनट बाद चले गए पर तारीफ़ इतनी कर गए कि बाकी पीरियड़ मुझे विशेष दिक्कत

नहीं हुई।

इस तरह राठी साहिब से मेरी पहली मुलाकात हुई। कुछ दिन बाद दिल्ली से किसी ग्रोवर ब्रदर्स की तरफ से एक घुमन्तू किताब बेचने वाला आया। उसके पास 19वीं और 20वीं शताब्दी के शुरूआती कुछ सालों के महानतम रूसी लेखकों की किताबों के अंग्रेजी व हिन्दी अनुवाद थे। मैंने हिन्दी, बंगाली (हिन्दी अनुवाद में) व अंग्रेजी व अमरीकन साहित्य तो कुछ पढ़ा था पर रूसी साहित्य में थोड़ा बहुत टॉलस्टाय व एक दो कहानियाँ गोर्की व चेखव के अलावा तुर्गनेव, पुश्किन, गोगोल, शोलोखोव व कुछ अन्य नाम केवल सुने थे। किताबों की छपाई, कागज, बांइडिंग भी बढ़िया थे और कीमत भी नाममात्र। मुझे 29 से 31 जुलाई का वेतन 42 रू ताज़ा ताज़ा मिला था, सो मैंने कुछ किताबें खरीद लीं। राठी साहिब ने देखा तो कहने लगे, ''दिखाओ तो सही क्या लिया है।'' किताबें उनको भी पसन्द आईं। फिर बोले, ''आइन्दा लेने से पहले दिखा लिया करो। मेरे पास हुईं तो ले कर पढ़ सकते हो और नई हुईं तो मैं तुमसे लेकर पढ़ सकता हूँ।'' कुछ रूसी साहित्य के बारे में बताया भी। इस तरह हमारी जान पहचान कुछ गहरी होने लगी पर तीन-चार महीने बाद एक दिन पता चला कि राठी साहिब तो प्रिंसिपल बन कर गोहाना जा रहे हैं। मैं आज भी अपनी तरफ़ से पहलकदमी कर कम बोलता हूँ: उस समय तो पहली बार एकदम नए लोगों के बीच आया था, इसलिए उनके जाने से कुछ अकेलापन महसूस हुआ।

जैसा क्रिकेट के खेल में होता है कि नए खिलाड़ी को फ़ॉरवर्ड शोर्ट लेग जैसी खतरनाक जगह पर फ़ील्डिंग के लिए लगा दिया जाता है, कुछ उसी तर्ज पर जाट कॉलेज में रिवाज़ था कि सबसे जूनियर आदमी को इंग्लिश लिटरेरी सोसाइटी का टीचर इनचार्ज बना दिया जाता था। उस साल वह घंटी मेरे गले बांध दी गई। फिर कहा गया कोई प्रोग्राम करो। सर्दियां आ गई थी, इसलिए एक दिन लाइब्रेरी और स्टाफ़ रूम के सामने वाले लॉन में डिक्लेमेशन कन्टेस्ट रख दिया। अध्यक्षता के लिए राठी साहिब से बेहतर कौन हो सकता था। उन्होंने इस शर्त पर निमंत्रण स्वीकार किया कि जब उनके कॉलेज में कोई कार्यक्रम होगा तो मैं भी टीम लेकर आऊंगा। और कुछ दिन बाद मुझे उनके अहसान का बदला चुकाने का मौका मिला। मैंने दो लड़कों को चुनकर भाषण लिखाए, उनको कहा कि अच्छी तरह से याद कर लो। बोलने का कुछ अभ्यास करवाया और फिर निश्चित दिन उन्हें गोहाना ले गया। उनमें से एक जे.पी. चौधरी तो स्पोर्ट्स स्कूल, राई का पढ़ा हुआ था, अंग्रेजी भाषा का कुछ अभ्यास था, सो ठीक-ठाक बोल गया पर दूसरा अनूप बास्केटबॉल का खिलाड़ी था, भाषण-वाषण का उसका पहला ही मौका था। फिर गोहाना कॉलेज में पहली बार इतना बड़ा कार्यक्रम हो रहा था। आसपास देहात से भी बहुत लोग आए हुए थे। इतनी भीड़ देखकर अनूप नर्वस हो गया और एक-आध मिनट बाद सब भूल गया। वह अंग्रेजी छोड़ हिन्दी में बोलने लगा: साहेबान, अब मैं आपको एक कहानी सुनाता हूँ। एक जंगल में एक शेर था जो दूसरे जानवरों को बहुत तंग करता था और मार कर खा जाता था। एक दिन जानवरों ने मीटिंग कर तय किया कि हम बारी बारी एक शिकार उसके पास रोज भेज दिया करेंगे पर वह हमें तंग न करे। शेर तक यह सन्देश पहुंचाने की डयूटी 'गादड़े' की लगी। 'गादड़ा' डरता डरता शेर के पास गया। शेर ने पूछा: बोल 'गादड़े' क्या कहने आया था? 'गादड़े' ने कांपते हुए जवाब दिया: जनाब, कहने तो बहुत कुछ आया था पर आपको देखकर सब कुछ भूल गया। सो साहेबान, भाषण तो मैं पूरा याद करके आया था पर आपके सामने सब भूल गया।

इतना कह कर अनूप तो बैठ गया पर श्रोता कई मिनट तक हंसते और तालियां बजाते रहे: गांव का किसान का छोरा स्टेज पर इतनी बात बोल गया। कार्यक्रम के बाद चाय के समय मैंने राठी साहिब से माफ़ी मांगी कि हम कुछ अच्छा नहीं कर पाए। इस पर उन्होंने अनूप की पीठ थपथपाते हुए कहा: अच्छा नहीं कर पाए? अरे भई, यह नहीं होता तो गांवों से आए चौधरी साहेबान क्या इतनी शान्ति से अंग्रेजी की भाषण प्रतियोगिता में बैठते? इस लड़के ने तो हमारा कार्यक्रम इतना कामयाब करवा दिया।

इसके बाद तो हर दो-चार महीने बाद गोहाना के चक्कर लगने लगे। चलो, राठी साहब के पास चलते हैं मातू राम की जलेबी खाने। मातू राम की जलेबी को जितना मशहूर राठी साहब ने किया, आज के ज़माने में तो इस प्रमोशन के लिए अच्छी खासी फ़ीस वसूल की जा सकती है।

एक बार जाट कॉलेज में दो-तीन दिन का बड़ा सांस्कृतिक कार्यक्रम रखा गया। संगीत प्रतियोगिता के लिए निर्णायक मण्डल में एक तो राठी साहब के नाम का सुझाव आया। निर्णायक मण्डल के एक और सदस्य थे मशहूर ऑर्थोपीडिक सर्जन डा. पी.एस. मैनी जो उस समय रोहतक मेडिकल कॉलेज में सीनियर प्रोफ़ेसर थे जिनके हीर गायन की दूर दूर तक धूम थी। प्रतियोगिता से पहले मैं जब मेहमानों का आपस में परिचय करवा रहा था तो बलबीर सिंह राठी नाम सुनते ही डा. मैनी चौंक कर बोले: आप क़तरा-क़तरा वाले बलबीर राठी हैं? भाई साहब ने शरमाते हुए जवाब दिया: जी। डा. मैनी एकदम उनसे लिपट कर कहने लगे: मैंने नहीं सोचा था कि रोहतक जैसी जगह इस

पाए का शायर होगा। डाक्टर साहिब तो खैर उनसे पहली बार मिल रहे थे पर मैं जो पता नहीं कब राठी साहिब के बजाय उनको भाई साहिब कहने लगा था, भी हैरान रह गया कि वह हरियाणा के अजीम तरीम शायर भी हैं।

आबिद आलमी साहिब (प्रो. रामनाथ चसवाल) ने जो उनकी मित्र मण्डली के एक खास सदस्य थे, भी कभी उनके व्यक्तित्व की इस खूबी का जिक्र नहीं किया था। मैं तो यही सोचता था कि दोनों की दोस्ती अंग्रेजी साहित्य का प्रोफ़ेसर होने और तरक्कीपसन्द ख्यालों की वजह से है। यह उनकी विनम्रता ही थी कि जिस शख़्स के साथ भाई साहिब जैसा रिश्ता जोड़ने की घनिष्ठता थी, उसके व्यक्तित्व के इतने महत्वपूर्ण पहलू से मैं अब तक अनजान था। चलते चलते जिक्र कर दूं कि डा. मैनी ने जिस क़तरा-क़तरा का जिक्र किया, उसके लिए उस साल हरियाणा उर्दू अकादमी ने भाई साहिब को सम्मानित किया था।

विनम्रता के साथ-साथ भाई साहिब की साफ़गोई भी काबिले तारीफ़ थी। कई लोगों को अपने शायर/कवि होने की गलतफ़हमी हो जाती है और वह सीखने के बजाय अपनी डींगें हांकने लगते हैं। मैंने देखा है कि लिहाज़ के मारे बड़े शायर/कवि भी उनकी कमज़ोरी बताने के बजाय तारीफ़ करके पीछा छुड़ा लेते हैं। पर भाई साहिब पूरी बेमुरव्वती के साथ उनको उनकी औकात का अहसास करवा देते थे। समझाते भी कि भैया, नारेबाजी शायरी नहीं होती। आप जो कहना चाहते हैं, उसके लिए कलात्मकता बहुत ज़रूरी है। खास बात यह कि जो लोग उनको अच्छी तरह जानते थे, वह उनकी बिना लाग-लपेट की आलोचना को बेशकीमती सलाह मानकर सिर-माथे लेते थे। यहां कोई नाम न लिए जाएं तो ही बेहतर।

भाई साहिब ग़ज़ब के मज़ाकिया भी थे। यह भी उनकी मज़ाकपसन्द तबीयत का हिस्सा था कि कम-से-कम अपने दोस्तों के सामने भाभी जी को वह नाम से सम्बोधित करने के बजाय 'विक्टोरिया' कह कर बुलाते और उस समय उनके चेहरे पर शरारत भरी मुस्कान बिखरी होती। उनकी वह मुस्कान और चश्मे के मोटे शीशों के पीछे से भी हंसती हुई आंखें इस समय मेरी आंखों को धुंधला किए दे रही हैं।

मैं आठ भाई-बहनों में सबसे छोटा घर में सबका लाडला था। कॉलेज में गया तो मेरा बड़ा भाई मेरे से पहले ही वहां था। मैं सब सीनियर्स का छोटा भाई बन गया। रोहतक आया तो वहां भी बलबीर (राठी) भाई साहिब, राम मेहर (राठी) भाई साहिब, हरिचन्द (हुड्डा) भाई साहब, (बलबीर) मलिक साहिब, चसवाल (आबिद आलमी) साहिब, विवेक (शर्मा) भाई साहिब बड़ी लम्बी फेहरिस्त है। लिखते लिखते ख़याल आया कि मियां, कहां सबका लाडला बने घूमते थे, 72-73 साल के तो तुम भी हो लिए। अब अपनी उम्र के मुताबिक बोरिया-बिस्तर संभालने की तैयारी करो। लाड-प्यार के लिए आधी सदी कम नहीं होती। तुम्हें तो उससे भी ज्यादा ही मिल गया।

लिखने के बाद देस हरियाणा के पिछले अंक के पन्ने पलट रहा था कि ध्यान गया कि सुभाष ने सम्पादकीय की शुरूआत राठी साहब की दो पंक्तिओं से की है। कैसा अजीब संयोग।

संपर्क - 9416781826

बलबीर सिंह राठी की ग़ज़लें

तुन्द[1] शोलों में ढल गया हूँ मैं
कोई सूरज निगल गया हूँ मैं

कितने राहत फ़िजा[2] थे अंगारे
बर्फ़ लगते ही जल गया हूँ मैं

तुम ने बांधा था जिन हदों[3] में मुझे
उन हदों से निकल गया हूँ मैं

एक मंज़र[4] में क्या समाऊंगा
इतनी शक्लों में ढल गया हूँ मैं

अब वो मासूमियत[5] कहाँ मुझ में
तुम से मिल कर बदल गया हूँ मैं

लोग इस पर भी हैं ख़फ़ा[6] मुझ से,
गिरते-गिरते संभल गया हूँ मैं

हासिदो[7]! मेरा जुर्म इतना है
तुम से आगे निकल गया हूँ मैं

मत बुलंदी[8] की बात कर 'राठी',
अब वहाँ से फिसल गया हूँ मैं।

1. प्रचंड 2. आराम देने वाला 3. सीमाएँ 4. दृश्य 5. भोलापन 6. नाराज 7. इर्ष्यालुओं 8. ऊंचाई

2

ख़ौफ़[1] पैदा करने वाले यूँ तो क़िस्से भी बहुत हैं,
ज़िन्दगी में बे सबब हम लोग डरते भी बहुत हैं।

झूठ से मरऊब[2] होकर हम बहक जाते हैं वरना,
सच अभी क़ायम है यारो, लोग सच्चे भी बहुत हैं।

शौक है लोगों का कोई फ़िलसिफ़े की बात करना,
गो सुनाने को तो उनके पास क़िस्से भी बहुत हैं।

ज़िंदगी लगती है जिन की कोई ग़म की दास्तां सी,
वक़्त ने वो लोग तो सचमुच मरोड़े भी बहुत हैं।

ख़ौफ़ के मारे बहुत हैं साहिलों[3] पर रुकने वाले,
वरना हर बिफरे समन्दर में उतरते भी बहुत हैं।

क्यों बुरा होने की तुहमत[4] धर रहे हो हर किसी पर,
हमने देखा है यहाँ तो लोग अच्छे भी बहुत हैं।

गो ख़रीददारों ने इनकी कुछ तो क़ीमत भी गिरा दी,
आज कल ये ग़म के मारे लोग सस्ते भी बहुत हैं।

यूं अगर देखें तो दुनिया ख़ूबसूरत भी बहुत है,
बदनुमा इस को मगर हम लोग करते भी बहुत हैं।

रास्ते में गिरने वाले मुन्तिज़र[5] हैं किस के 'राठी',
वरना अक्सर गिरने वाले ख़ुद ही उठते भी बहुत हैं।

1. डर 2. रौब में आना 3. किनारों 4. आरोप 5. प्रतीक्षारत

3

जो कटे हैं, उन सरों सा एक सर मेरा भी हैं,
जो जले हैं, उन घरों जैसा ही घर मेरा भी है।

आग लेकर आ गये हो तुम गुलिस्तां[1] में, मगर,
इस चमन में आशियाँ[2] इक शाख़[3] पर मेरा भी है।

इक ग़लत रस्ते पे लेकर उस को तुम चल तो दिए,
वो शरीफ़ इन्सान लेकिन हमसफ़र मेरा भी है।

तुम बसाते जा रहे हो जा-ब-जा नफ़रत कदे,
इस ज़मीं पर एक हिस्सा नाम भर मेरा भी है।

खेल नफ़रत का है, लेकिन, प्यार का हामी हूँ मैं,
इस तुम्हारे खेल में, कुछ दाव पर मेरा भी है।

मैं किसी को क्यों बनाने दूँ इसे दोज़ख[4] नुमा,
ये जहाँ औरों का होगा, मगर मेरा भी है।

आ गई बस्ती जलाने मज़हबी[5] लोगों की भीड़,
मैं कि चिल्लाया बहुत, बस्ती में घर मेरा भी है।

गुमरही[6] का डर भी है और रास्ता दुश्वार भी,
अब उसी रस्ते पे लेकिन इक सफ़र मेरा भी है।

मैं ही ला सकता हूँ 'राठी' खुशनुमा रंगी सहर,
शब-परस्तों[7] को यक़ीनन एक डर मेरा भी है।

1. बाग 2.घोंसला 3. टहनी 4. नरक 5. धार्मिक 6. भटकना 7. अंधेरे के उपासक

4

नफ़रत वालों ने हर जानिब[1] इक तूफ़ान उठाए रक्खा,
लेकिन हमने हर तूफ़ां में प्यार का दीप जलाए रक्खा।

छोटे-छोटे से टुकड़ों में बाँट दिए सब ख़्वाब हमारे,
छोटे-छोटे जाल बिछा कर तुमने हमें उलझाए रक्खा।

तुम ने हमारी ख़ातिर ढूंढी उलटी राहें, फ़रज़ी मंज़िल,
झूठे रहबर[2] बन कर हम को राहों में भटकाए रक्खा।

तुमने चाहा बाज़ी हारें लेकिन हम ने राहे-वफ़ा में,
प्यार की साख बनाए रक्खी, दिल को रोग लगाए रक्खा।

मुद्दत पहले तुम तो हम पर अपना बोझ भी डाल चुके थे,
अपनी हिम्मत देखो हम ने सब का बोझ उठाए रक्खा।

हम से सादा-दिल लोगों की ऐसे अपनी उम्रें गुज़रीं,
औरों का दुःख अपना समझा, अपना दर्द भुलाए रक्खा।

अपनी तो दुनिया से यूँ ही रहनी थी पहचान अधूरी,
दुनिया ने हम से तो अपना असली रूप छुपाए रक्खा।

जिनके क़ब्ज़े में सूरज था, उनकी नीयत ठीक नहीं थी,
उन लोगों ने घोर अंधेरा हर जानिब फैलाए रक्खा।

समझाने पर भी 'राठी' जी अपनी ज़िद्द से बाज़ न आए,
दुनिया-भर के हंगामों में नाम अपना लिखवाए रक्खा।

1.तरफ 2. नेता

5

रूठने वाले तो हम से फिर गले मिलने लगे हैं,
फिर भी अपने दरमियाँ[1] रिश्ते नहीं है-फ़ासिले हैं।

कैसे मानूं इन सभी को गुमरही का शौक़ होगा,
जिन को भटकाया गया है ये उन्हीं के क़ाफ़िले हैं।

ज़िन्दगी की राह यारो इतनी आसाँ भी नहीं है,
हर क़दम पर ग़म के मारे किस क़दर उलझे मिले हैं।

कुछ सवालों के सहारे कब संवर सकती थी दुनिया,
उन सवालों से उभरते जाने कितने सिलसिले हैं।

कर रहे थे रहनुमाई जिनकी जंगल के दंरिन्दे,
हम को ऐसे कारवां भी राह में अक्सर मिले हैं।

अपने जैसे ग़मज़दा[2] लोगों की बस्ती को जलाना,
गर निडर होना यही है फिर तो हम बुज़दिल भले हैं।

फिर सितम वालों का हम पर दबदबा बढ़ने लगा है,
जो कभी थे साथ अपने वो भी उनसे जा मिले हैं।

अब जहाँ के मालिकों को भी तसल्ली हो गई है,
हम सितम सहते रहेंगे, होंठ जो अपने सिले हैं।

ये बताओ कैसे राठी जी करेंगे तर्के-दुनिया[3],
वो जहाँ भर के बखेड़े साथ जब लेकर चले हैं।

1. बीच 2. दु:खी 3. दुनिया को छोड़ना

6

बिन किसी के दर्द में शामिल हुए,
कैसे मिटते दरमियां[1] के फ़ासिले।

क्या कभी रुकता है दरिया वक़्त का,
कैसे रुकते दर्द-ओ-ग़म के सिलसिले।

सब ने सच माना तुम्हारे झूठ को,
लोग ही कुछ इस क़दर मासूम थे।

राह में हमसे हुए थे जो अलग,
वो हमारे क़ाफ़िले में आ मिले।

कौन उन पर चल के मंज़िल ढूंढता,
इस क़दर दुश्वार[2] थे सब रास्ते।

यूँ मिटा नफ़रत का सहरा[3], हम वहाँ,
प्यार का दरिया बहा कर ले गये।

जिन पे रखता था न कोई भी क़दम,
क्यों उन्हीं राहों पे 'राठी' जी चले।

1. बीच में 2. कठिन 3. मरुस्थल

क़तआत

हर क़दम पर टूटते जाते हैं लोग,
ज़िन्दगी से ठीक घबराते हैं लोग,
कैसे पहचाने किसी के दर्द को,
अपने-अपने ज़ख़्म सहलाते हैं लोग।

***

क्या उजालों की अब तलाश करें,
घुप्प अंधेरों से डर गये हैं लोग,
चोटियों के लिए चले थे मगर,
घाटियों में उतर गये हैं लोग।

***

ये सफ़र भी कमाल है इसमें,
अपना रहबर ही रहज़नी भी करे,
हर क़दम पर करे वो हक़तलफ़ी,
फिर वही शख़्स मुन्सिफ़ी भी करे।

***

ये मुखौटे तो काम के निकले,
अपना हर झूठ सच लगा सब को,
काम आएंगे वक़्त पर फिर भी,
अब ये चेहरे उतार कर रख लो।

***

बन्द हैं उन पे जो भी दरवाज़े,
लोग अब ठोकरों से खोलेंगे,
जिन को समझे हो बेज़ुबां वो भी,
ज़लज़लों की ज़ुबान बोलेंगे।

***

वक्तव्य

शिक्षा में दिशा का सवाल

□ **प्रो. कृष्ण कुमार, प्रस्तुति - अरुण कैहरबा**

(7 अक्तूबर 2018 को पंचायत भवन, कुरुक्षेत्र में डॉ.ओम प्रकाश ग्रेवाल स्मृति व्याख्यान आयोजित किया गया। मुख्य वक्ता पदम् श्री प्रोफेसर कृष्ण कुमार ,पूर्व निदेशक, एन. सी.ई.आर. टी. ने 'वर्तमान दौर में शिक्षा में दिशा के सवाल' विषय पर व्याख्यान दिया। अध्यक्ष मंडल में प्रो. टी.आर. कुण्डू, प्रो. हरि सिंह सैनी, श्रीमती उर्मिला ग्रेवाल शामिल थे। इसमें 200 के करीब लोगों ने भाग लिया। 20 से अधिक लोगों ने इस बहस में हिस्सा लिया। डॉ.ओम प्रकाश ग्रेवाल अध्ययन संस्थान के सचिव प्रो. सुभाष चंद्र, संपादक देस हरियाणा ने संचालन किया। प्रस्तुत है यह व्याख्यान के अंश जिसे लिपिबद्ध किया 'देस हरियाणा' के सह संपादक अरुण कैहरबा ने। अरुण कैहरबा स्वयं एक समर्पित शिक्षक, रंगकर्मी व सामाजिक कार्यकर्ता हैं। - सं.)

जिस गजल के साथ यह आयोजन शुरू हुआ है, उसकी महत्वाकांक्षा से अपने आप को जोड़ सकना निश्चित रूप से मेरी पीढ़ी के लिए जो आजादी के बाद पैदा हुई थी, बहुत आसान है।

एक जीवन इतिहास के लायक समय नहीं देता मनुष्य को। और जब हम याद करते हैं अपने से पहले गुजरी हुई प्रतिभाओं को, उनके योगदान को, उनके विचारों को तभी हम समझ पाते हैं कि इतिहास प्रक्रिया भले ही बहुत धीमी चलती हो, लेकिन उस प्रक्रिया को समझना यही मनुष्यता देता है या मनुष्य जीवन को सार्थकता देता है। इसी का शायद एक माध्यम है शिक्षा। कि वो हमें अपने जीवन से बहुत पीछे तक ले जाने की क्षमता रखती है और जो पीछे का दृश्य है, उसको समझकर अपने परिदृश्य को समझने की सामर्थ्य देती है। इससे भी पहले शायद वो हमें अतीत को समझने की उत्सुकता देती है और समझने के औजार भी देती है।

इन बातों को कहते हुए सबसे पहले मुझे लगता है कि शिक्षा की अवधारणा को थोड़ा सा टटोलूं आपके बीच। यह शब्द थोड़ा भ्रामक है यदि आप शिक्षा कहें तो इसके समकक्ष जो क्षेत्र हैं समाज के, उसकी तुलना में यह काफी भ्रमग्रस्त क्षेत्र लगता है। वैसे इसकी तुलना आप स्वास्थ्य से करें। तो लगभग हर कोई जानता है कि स्वस्थ होकर हमें कैसा लगता है और अस्वस्थ होने पर कैसा लगता है। इसके लिए कोई योग्यता नहीं चाहिए। इस बात को समझने के लिए कि जब हम बीमार पड़ते हैं तो कैसा महसूस करते हैं। किस चीज की कमी महसूस करते हैं और जब हम बीमारी से उबर आते हैं या हमारी सेहत ठीक होती है या किसी स्वस्थ व्यक्ति को देखते हैं तो उसका ठीक-ठीक क्या आशय होता है, क्या अनुभूति होती है। यह हर मनुष्य जानता है। लेकिन यदि इसकी तुलना शिक्षा से करें तो इतनी स्पष्टता से हम यह नहीं कह सकते कि क्या शिक्षा का अभाव अपने आप में कोई ऐसे परिणाम लाता है, जो दिखाई दें। महसूस हों। या इसके विपरीत शिक्षा मिली है जिनको तो शिक्षा प्राप्ति को देखकर कोई स्पष्ट रूप लेती है हमारे मन में। या स्वयं जब हम शिक्षित हो जाते हैं तो क्या कोई खास महसूस करते हैं। शिक्षित और अशिक्षित में क्या फर्क होता है। इस तरह की बातें भी कई प्रकार के विवादों को जन्म देती हैं और आज से नहीं हमेशा से देती रही हैं। क्योंकि शिक्षा के साथ एक प्रकार का अहंकार आता ही है। और लगता है कि जिसको शिक्षा नहीं मिली, वो हमसे कुछ अलग है। ये तमाम रूपक जो प्राचीन काल से व्याप्त हैं समाज में जैसे कि दीए का रूपक है। अंधकार का रूपक है। कमल का रूपक है। यह रूपक हमें बताते हैं कि शिक्षा का जो पूरा दायरा है विषय के रूप में, वह स्वास्थ्य के तुलना में कितना ज्यादा हमारे सामने वैचारिक भ्रम का भी क्षेत्र है और चुनौती का भी क्षेत्र है। जैसे आप कमल की व्याख्या करें। मैं इसकी राजनीतिक व्याख्या नहीं कर रहा हूँ। एक फूल के रूप में क्यों यह संस्थाओं के लिए बड़ा एक प्रिय बिंब है, प्रतीक है। इसका कारण शायद यही है कि कमल का फूल जिस तरह के परिवेश में खिलता है। जो प्राचीन काल में ही पंक या कीचड़ के रूप में जाना जाता है, उससे ऊपर रहता है। और शिक्षित मनुष्य की यह परिकल्पना किस युग में

किस समाज में नहीं रही। शायद हर एक समाज में रही होगी। आधुनिक काल में कुछ देशों में शायद ना हो। लेकिन हमारे समाज में निश्चित ही है कि शिक्षित व्यक्ति अपने आस-पास के कीचड़ से कुछ ऊपर निकला हुआ दिखता है। यानी पहले तो वो अपने आस-पास की दुनिया को कीचड़ मानता है और उससे निकल जाना ही अपनी शिक्षा का उद्देश्य बना लेता है। इसी प्रकार यह दीए और अंधेरे का जो रूपक है कि शिक्षा को प्रकाश के साथ जोड़ा जाता है और जिसको यह प्राप्त नहीं होती, माना जाता है कि वह अंधेरे में है। इस प्रकार के रूपक समाज में व्याप्त रहे हैं और लगातार इस प्रकार के मूल्यों को जन्म देते हैं, जोकि समाज की संरचना को प्रभावित करते हैं। समाज में जो अलग-अलग परिस्थितियों में जीने वाला समाज है, उसको इन्सान की तरह ना देखकर हम कई कोटियों में बांटना शुरू कर देते हैं।

हम यह सोचते हैं कि जो साक्षर है वो निरक्षर की तुलना में ज्यादा सजग होगा, जागरूक होगा और जानता होगा इत्यादि। कई दशक बीत गए हैं इस तरह के प्रचार-प्रसार में इसलिए और भी मुश्किल हो जाता है - शिक्षा शब्द से जुड़ी हुई सामाजिक व्यंजनाओं को छू पाना- समझ पाना। दरअसल एक बुनियादी अंतर करने की आवश्यकता है, जो इस काम के लिए मेरा प्रस्थान बिंदु है।

यदि शिक्षा शब्द को एक अवधारणा के रूप में ही देखें और सिर्फ उसके अमूर्त या दार्शनिक रूप को ही मन में रखें तो उसकी अपनी कुछ भंगिमाएं स्वाभाविक रूप से हमारे मन में उभरती हैं। अगर इसी शब्द को हम व्यवस्था से जोड़ लें यानी - शिक्षा और शिक्षा व्यवस्था। तो काफी विपरीत भंगिमाएं, काफी विपरीत किस्म के अर्थ हमारे मन में उभरते हैं। इन दो शब्द या शब्द प्रयोगों के बीच शिक्षा इन दो प्रयोग क्षेत्रों के बीच का द्वंद्व ही शायद हमारे लिए इस विषय पर विचार करने का सुगम रास्ता खोल देता है। अगर हम इन दो प्रयोग क्षेत्रों की तुलना करें तो एक क्षेत्र है शिक्षा। एक अवधारणा या विचार के रूप में। और दूसरा प्रयोग है शिक्षा एक व्यवस्था के रूप में। तो जो यह पहला वाला विचार के रूप में शिक्षा वाला प्रयोग है, उस प्रयोग को समझने के लिए हम जैसे ही आगे बढ़ते हैं तो हमारे मन में अनेक प्रकार के अनुभव और कुछ अनुभूतियां सहज ही आ जाती हैं। कुछ अनुभव हमारे बचपन से जुड़े हुए हैं। और हमें शिक्षा को जो अनुभव अपने जीवन काल में मिला, हम व्यस्क होते-होते, प्रौढ़ होते-होते अपने जीवन की संध्या तक पहुंचते-पहुंचते उसको ही एक प्रकार का पैमाना मान लेते हैं। शिक्षा वो थी जो हमें मिली थी। और वो उसके अंदर भी हम एक-दो विशेष दृश्यों को, विशेष शिक्षकों को या विशेष पाठों को याद करके उसको एक प्रकार का श्रेष्ठतर विचार मानते हैं - हां शिक्षा तो वो थी जो हमें फलाने शिक्षक के संपर्क में मिली थी। और फिर अपने जीवन काल का दृश्य एक तरह की ढ़लान जैसा बनकर उभरता है कि हमने जो शिक्षा का अनुभव पाया, वो हमारे बच्चे नहीं पा रहे। ऐसा महसूस होता है। यह सिर्फ व्यक्तिगत स्तर पर ही नहीं होता। आप अगर इसको फैलाएं तो कईसमाजों में-भारत उसके लिए एक अच्छा उदाहरण है। यह ढ़लान इतिहासक्रम में लोग महसूस करते हैं कि शिक्षा का जो स्वरूप प्राचीन काल में था, उनको लगता है कि वो स्वरूप ही असली शिक्षा थी। या शिक्षा का वैचारिक संस्करण जो उस समय बना, वो शिक्षा का उनके लिए एक पैमाना बन जाता है। वो कहते हैं कि हां वो थी शिक्षा, जो आज दी जा रही है या जो इतिहास के इधर के दौर में चालू हुई, ये तो कुछ और ही है। व्यावसायिक है या कि इसके कोई मूल्य नहीं हैं इत्यादि।

इस तरह के लोग इतिहास को भी एक ढ़लान में बदल देते हैं। हममें से बहुत से लोग ऐसा महसूस करते भी हैं। अपने जीवन काल के रूप में भी और संस्कृति या समाज के, संपूर्ण देश के ही नहीं बल्कि संपूर्ण दक्षिण एशिया के इतिहास को भी इस तरह देखते हैं कि हां कुछ ऐसी चीज थी प्राचीन युग में जो शिक्षा के विचार का असली रूप था। हममें से बहुत से लोग इस विषय पर लिखते हैं, बोलते हैं। मुख्य सवाल यही पूछते हैं कि वो शिक्षा फिर से कैसे लाई जा सकती है?

उनके मन में कल्पना रहती है किसी सुदूर स्थान पर किसी गुरू की, जो अपना सारा जीवन अपने शिष्यों को समर्पित कर देता है या एक ऐसी कल्पना रहती है, जिसमें शिष्य भी जो अपने आप को शिक्षा में समा देता है। और इस तरह से गुरू-शिष्य परंपरा का एक कथानक इस शिक्षा के एक विचार की तरह से सोचने में उनके मन में उत्पन्न होता है। उनको लगता है कि यह चीज थी- गुरू-शिष्य परंपरा जो हमने सामूहिक रूप से समाज ने हासिल की थी, बनाई थी और वो हमारे हाथ से कहीं छिटक गई है। कहां चली गई है, इसके लिए वह तरह-तरह के फिर बुजुर्गों को ढूंढ़ते हैं। संस्थानिक रूप से या कि सांस्कृतिक रूप से मूल्यों की दृष्टि से, फिर इतिहास को एक प्रकार की चार्जशीट बना लेते हैं कि इसमें किस-किस ने इन चीजों को नष्ट किया, जो बड़ी श्रेष्ठ थी। हम प्राचीन विश्वविद्यालयों की कल्पना करते हैं, नालंदा, तक्षशिला आदि। हम सोचते हैं - यह सोचते हैं कि ये शिक्षा के आदर्श रूप थे। इस तरह से शिक्षा जब एक विचार के रूप में अपने जीवन काल में या एक समग्र समाज के जीवनकाल के

संदर्भ में, उसके इतिहास काल के संदर्भ में चित्रित की जाती है वो वो कुछ अनुभूतियों को जन्म देती है और अपने संदर्भ में वो कुछ अनुभवों को भी जन्म देती है। यह अनुभव व अनुभूतियां इतनी ताकतवर होती हैं प्राय: कि फिर ये विचार के लिए खास कर खोज के लिए, जिसे आप गवेष्णा या रिसर्च कहेंगे, या उत्सुकता या जांच कहेंगे, उसके लिए स्थान नहीं छोड़ती। इन अनुभूतियों की एक विशेषता है कि हमें अपने बचपन की यादें ही इतनी ज्यादा घेर लेती हैं कि फिर हमें ये जरूरत नहीं महसूस होती कि हम शिक्षा का जो स्वरूप आज है, उसे समझें। या समझने के लिए कोई ऐसा प्रयास करें, जो थोड़ा व्यवस्थित हो। और हम कह सकें कि मैं शिक्षा की बात करूंगा। सिर्फ अपने अनुभवों से नहीं, बल्कि शिक्षा को वैज्ञानिक तरीकों से समझूंगा। या शिक्षा को एक समाज वैज्ञानिक ढ़ंगों से समझकर फिर अपना मत तय करूंगा। इसकी उनको आवश्यकता महसूस नहीं होती। इतिहास के संदर्भ में भी अगर हम अनुभूतियों से घिर जाएं, तो फिर हम मिथक और इतिहास में फर्क करने की जरूरत नहीं समझेंगे। आप किसी बड़े प्राचीन भारत के विद्वान से भी पूछें कि प्राचीन काल में जो शिक्षा भारत में थी, क्या उसको लेकर कुछ निश्चित प्रमाण हैं। क्या उसके बारे में विस्तार से कुछ कह सकते हैं।

मैं समझता हूँ कि भंडारकर जैसा विद्वान भी संकोच करेगा विस्तार में जाने से। इसलिए क्योंकि हमारे पास बहुत ही सीमित ज्ञान है प्राचीन भारत का। या उसके बाद के भारत का। वैसे तो ये जो कोटियां हैं प्राचीन इतिहास, मध्यकालीन इतिहास और आधुनिक इतिहास। यह भी हमारी गढ़ी हुई कोटियां हैं। काल-अतीत को समझने के लिए इतिहास एक अनुशासन के रूप में कोटियां गढ़ता है। और फिर वे कोटियां हमारे विचार को प्रभावित करने लगती हैं। हमारी सोच को प्रभावित करने लगती हैं। हम उस प्रभाव को इतना ज्यादा अपने भीतर ग्रहण कर चुके होते हैं कि वो प्रभाव नहीं देख पाते। ऐसी स्थिति में हमारे पास इतनी जिज्ञासा नहीं रह जाती कि हम इस विषय पर कोई जांच कर लें।

क्या सचमुच आज की स्थिति में जिसे शिक्षा कहा जाता है, उस शिक्षा को हम किसी पहले की स्थिति से तुलना के लिए उपयुक्त विषय समझ सकते हैं। यह किस तरह की जांच को आगे बढ़ाएगा। इस जांच के किस तरह के दायरे होंगे। इसमें सत्य और असत्य के बीच, मिथक और इतिहास के बीच अंतर कैसे किया जाए? हम इन प्रश्नों से जूझने की जगह खो जाते हैं अपनी उस अनुभूति में जिसमें प्राचीन बहुत स्वर्णिम और वर्तमान बहुत धूमिल लगता है। अपने जीवन काल के संदर्भ में भी शिक्षा के एक विचार के रूप में भी शिक्षा इस तरह की अनुभूति को जन्म देती है। हमें लगता है कि हमारे बचपन का समय कुछ इतिहास से बाहर जैसा था। कुछ तो उस बचपन का अर्थ ही यह होता है कि उस समय हम अपनी ऊर्जा से भरे हुए होते हैं और माता-पिता व बड़ों की छत्रछाया में जीते हैं। इसलिए स्नेह से, अनुभूतियों से भरा एक समय होता है। इसलिए वो हमारे लिए एक पैमाना बन जाता है और उस दौर में जो-जो हुआ। उसकी एक निरंतरता जैसी हमें महसूस होती है। उसकी तुलना अगर आप स्वास्थ्य से करें तो आप देख सकते हैं कि स्वास्थ्य कितना स्पष्ट क्षेत्र है। हमें याद रहता है कि किस वर्ष हमें टायफायड हुआ था। उस समय हमें कैसा लगा था। वो एक अलग हमारी स्मृति में एक दीप की तरह स्पष्ट बनी हुई एक स्मृति रहती है। शिक्षा एक लंबा अनुभव जो कई वर्ष चली। हम उसमें दाखिल हुए अपनी शैशवावस्था में। किशोर भी उसी में हो गए। फिर हम युवा भी हो गए। जिन लोगों को यह अवसर मिलता है कि वो प्राथमिक स्कूल से विश्वविद्यालय तक पढ़ें, उनके लिए शिक्षा एक लंबा एक पठार जैसी बन जाती है। भले ही उन्होंने ऐसी संस्थाओं में अध्ययन किया हो, जिनमें स्थितियां बहुत ही अच्छी ना हों। क्योंकि यह अनुभव बाल्यावस्था से जुड़ा होता है, इसमें ऐसा जादू है कि हरीतिमा ही दिखाई देती है और आज के संदर्भ में उसकी तुलना में कुछ ज्यादा ही हरी दिखती है।

ये सारे विचार हमें बताते हैं कि शिक्षा का ये जो प्रयोग क्षेत्र है, एक विचार के रूप में यह जज़्बाती क्षेत्र है। दरअसल एक वैचारिक क्षेत्र नहीं रह जाता। और इसमें आदर्श, मूल्य, मिथक इन्हीं का राज चलता है। हमारे मन में शिक्षा एक आदर्श जैसी एक छोटी सी ज्वाला जैसी बन जाती है। हमें लगता है कि शिक्षा एक जादू है, जिसके जरिये समाज को बदला जा सकता है। अपने जीवन को प्रकाशित किया जा सकता है। किसी और के जीवन को राह दी जा सकती है। इस तरह की कई ऐसी महत्वाकांक्षाएं शिक्षा का विचार सहज रूप से मनुष्य के मन में पैदा करता है। उसका एक और कारण भी है, वो ये है कि जब हम शिक्षा पाकर व्यस्क हो जाते हैं। जब हमारे बच्चे हो जाते हैं तो उन बच्चों को लेकर हमारे मन में शिक्षा का विचार एक आदर्श की तरह से ठेलता है। कि हम इन बच्चों को ऐसी शिक्षा दें कि जिससे उनके जीवन में वो यत्किंचित कमियां ना रह जाएं जो मेरे जीवन में रह गई। इनकी महत्वाकांक्षाएं हमसे भी ज्यादा आगे बढ़ें। इस तरह की कई बड़ी सुंदर सी धारणाएं शिक्षा हमारे मानस पर चस्पां कर देती है। इसलिए क्योंकि हम खुद माता-पिता बन चुके होते हैं। तो यह क्षेत्र और भी जज्बाती बन जाता है। हम शिक्षा के विचार को व्यक्तिगत स्तर पर जोड़ देते हैं कि हम अपने बच्चों का भविष्य बना सकते हैं। बहुत अहंकारी विचार है ये। कि मैंने जिस बच्चे

को जन्म दिया है, उस बच्चे के भविष्य का निर्माता मैं हूँ। यह अपने आप में एक बड़ा अनोखा सा विचार है। हम जानते हैं कि जिस बच्चे के साथ हम दस-बारह साल जिए हैं, तो आपको पता ही है कि बच्चा वह नहीं करता जो आप चाहते हैं। बल्कि कुछ ऐसा करता है जो आपको चौंकाता है। बहुत से लोगों को तो वह बचपन से ही चौंकाने लगता है और युवावस्था तक आते-आते तो कई बच्चे बहुत ज्यादा चौंकाते हैं अपने माता-पिता को। और शायद युवावस्था का यही पैमाना है कि वह अपने माता-पिता को चौंकाए। वह ऐसा रास्ता चुने जो हमने कल्पित नहीं किया था। जीवन का एक अर्थ है यह भी कि हमारी संतान वह ना करे जो हमने किया था। वह उस डगर पर ना चले, जिस पर हमने सिमेंट करवाया, डामर करवाया। अगर उसी डगर पर उसे चलना है तो वह क्या डगर बनाएगा अपनी। डगर बनाने में जो आनंद आता है जीवन में। जंगल में राह ढूंढ़ कर जो प्राप्ति होती है, जो सुख मिलता है, वह उसको नहीं मिलेगा, जिसके माता-पिता उसके लिए जमीन-जायदाद, बीवी, नौकरी हर चीज तय करना चाहते हैं। ऐसे माता-पिता की संतान होना सौभाग्य की बात या दुर्भाग्य की बात है। यह सवाल मैं छोड़ देता हूँ क्योंकि यह हम सबके लिए बड़ा रोचक विचार है।

शिक्षा के विचार का जो पूरा क्षेत्र है, एक विचार, एक अवधारणा के रूप में शिक्षा, उसकी ये सीमाएं हैं, जो मैंने संक्षिप्त विवेचना से आपके सामने पेश की हैं। शिक्षा का विचार आप कह सकते हैं कि भ्रामक अनुभूतियों का क्षेत्र है। जिसमें व्यवस्थित सोच की संभावना अपने आप में घट जाती है। चाहे वह व्यक्तिगत जीवन के संदर्भ में हो या पूरे सामूहिक, सामाजिक, राष्ट्रीय या पूरे दुनिया के जीवन के संदर्भ में हो। ये शिक्षा की अवधारणा की सीमाएं हैं या आप कह सकते हैं कि उसकी समस्याएं हैं। साथ में यह भी याद करना चाहिए कि शिक्षा का वैचारिक या अवधारणात्मक क्षेत्र यह अपनी सीमाओं के बावजूद अभिवृद्धि करता है। यह कहीं ना कहीं हमारे मन में रोमांटिक सी आह बनाए रखता है - कि जो आज है, वह ऐसा नहीं रहेगा। यह आज से कुछ बेहतर बन सकता है, बनेगा। और कौन बेहतर बनाएगा। बहुत से लोग यह सोचते हैं कि शिक्षा ही उसे बेहतर बनाएगी।

शिक्षा एक अवधारणा के रूप में आशा का संचार भी करती है। यह इस क्षेत्र की विशेषता है। एक अवधारणा के रूप में एक छोटा सा सर्वेक्षण हमने किया कि यह किन अनुभूतियों को जन्म देती है। किस प्रकार से ये अपने ही अनुभवों से पैदा होती है ना कि किसी व्यवस्थित विचार-क्रम से या किसी गवेषणा से, खोज से। यह अपने आप में एक आदर्श जैसा पैदा करती है और शिक्षा को जादू की छड़ी जैसा बना लेती है। जैसे समाज की तमाम विकृतियां, तमाम समस्याएं एक कूंजी से दूर होंगी, वह है - शिक्षा। बहुत जिम्मेदारी अनजाने में हम शिक्षा पर डाल देते हैं और हम ये सोचते हैं कि यही है वह चीज। यह छोटी सी विवेचना या सर्वेक्षण शिक्षा के दो में से पहले प्रयोग को लेकर था।

आईये अब दूसरे प्रयोग क्षेत्र में चलें, जहां शिक्षा का अर्थ है - शिक्षा की व्यवस्था। इस संदर्भ में विचार करने से पहले मैं चाहूंगा कि आप एक क्षण के लिए अपने मन को थोड़ा शांत करके इस बात पर गौर करें कि जो शिक्षा का विचार है आदर्श है, वह अगर इस लौकिक संसार में कहीं प्रकट होता है तो वह व्यवस्था के रूप में ही प्रकट होता है। शिक्षा किसी पेड़ पर लटकी हुई नहीं मिल सकती। शिक्षा आसमान से गुजरते हुए तारे के रूप में हमें नहीं दिख सकती। अगर हमें वह कहीं मिलती है, दिख सकती है तो किसी स्कूल में दिख सकती है, किसी कॉलेज में दिख सकती है। यानी कि यह जो शिक्षा का दूसरा प्रयोग क्षेत्र है आप कह सकते हैं एक तरह यथार्थ बोध लिए हुए है। इस अर्थ में यह अनिवार्य रूप से यथार्थ के फलक पर खड़ा करता है शिक्षा को। इसका एक आशय है कि शिक्षा मनुष्य को, कोई कितना ही बड़ा हो छोटा हो अपनी हैसियत में, गरीब हो, अमीर हो किसी भी रूप में शिक्षा अगर उसके जीवन में दिखेगी तो वह किसी संस्था के संदर्भ में ही दिखेगी। अगर उसका अनुभव हमें अपने जीवन में होगा तो वह किसी संस्था के रूप में ही होगा।

शिक्षा एक सामाजिक संस्था है और वह एक व्यवस्था का अंग है। इतिहास में उसका प्रवेश ही इस रूप में होता है। इस व्यवस्था को संदर्भ बनाकर शिक्षा को समझना, यह शिक्षा के दूसरे प्रयोग क्षेत्र की बड़ी चुनौती है। कुछ इस कारण है कि जब हम इस चुनौती को झेलने के लिए आगे बढ़ते हैं, स्वाभाविक रूप से हम व्यस्क होते हैं। हमारे बच्चे होते हैं या हम नौकरी कर रहे होते हैं। ऐसे समय में यह जो संस्थानिक ढ़ांचा है, यह अपने वर्तमान रूप में हमें उस तरह से उपलब्ध नहीं रह जाता, जिस तरह से वो हमें बचपन में उपलब्ध था। तो भले ही आज हम उसी विश्वविद्यालय में जाएं, जिसमें हम पढ़े थे। हम कभी उसी स्कूल में जाएं, जहां हम कभी बचपन में गए थे। अपनी स्मृतियों से बाहर निकले बिना हम वहां नहीं रह सकते। अनिवार्य रूप से हम उस संस्था की तुलना उसके पुराने अनुभव से करेंगे, जो हमें मिला था। यह हमारे व्यवस्थित सोच की राह में बाधा बनेगा, क्योंकि वह संस्था, जहां आज है, वहां है जहां इतिहास उसे आज ले आया है। यानी कि आज का एक इतिहास है। जैसा कि मैंने शुरू में कहा था - मनुष्य को मनुष्य बनाने वाला कौन सा संस्कार

है। वह शायद इतिहास का संस्कार है। इतिहास के बोध का संस्कार है, जो हमें महसूस कराता है, कि हम एक क्रम में यहां हैं। और हमको एक क्रम में ही अपने बाद कोई स्मृतियां छोड़ रहे होंगे। मनुष्य होना ही इतिहास में प्रवेश करना है। जानवर के रूप में, मछली के रूप में, पक्षी के रूप में ऐसा संभव नहीं है। यह बात बहुत शिक्षाविदों ने बहुत सुंदर ढ़ंग से समझाई है। खरगोशों को शेर हजारों साल या शताब्दियों से खा रहे होंगे। अभी तक किसी खरगोश के मानस में ये विचार पैदा हुआ हो कि वो अपनी इस त्रासदी से अपने आप को मुक्त कर सके। तो ऐसा विचार तो किसी कहानी में ही हुआ होगा। और बहुत मशहूर कहानी है- पंचतंत्र की। जिसमें एक खरगोश के मन में ये विचार पैदा होता है। वरना खरगोश होने का अर्थ ही है कि उस इतिहास में प्रवेश ना कर पाना, जिसमें खरगोश और शेर का संबंध प्रकृति ने नियत किया है।

मनुष्य भिन्न है। मनुष्य जब इतिहास को समझ पाता है, तब वह दिखता है। जिसका अर्थ है कि इतिहास मनुष्य शुरू करते हैं और मैं भी अपनी भूमिका पहचानूं और निभाऊं तो पूरा मनुष्य बन पाऊंगा। एक मनुष्य के नाते मुझे भी लगेगा कि मैंने भी इतिहास पर एक छोटी-मोटी छाप छोड़ी है। मिसाल के तौर पर मैं एक शिक्षक हूँ और जब मैं एक छात्र था तो मेरी कक्षा में चार-पांच छात्र थे, जो ईमानदारी से पढ़ते थे। अपना जीवन पूरा करते-करते मैं कम से कम चार-पांच छात्र तो ऐसे देकर जाऊं जो जब मैं छात्र था उस तरह से आज पढ़ते हों। तो मैं शिक्षा के जरिये एक तरह का प्रजनन करता हुआ जाऊंगा। इतिहास के लिए यह बड़ी चुनौती है कि हम समाज में कुछ ऐसा छोड़ सकें, कर सकें जो हमें लगता है कि हमारे जीवन का एक श्रेष्ठतर रूप था। यह इतिहास की एक देन हो सकती है, यदि हम इतिहास को समझेंगे। तो यह जो शिक्षा का व्यवस्थापरक क्षेत्र है इसमें जब हम प्रवेश करते हैं तो हमें लगता है कि शिक्षा की व्यवस्था ही शिक्षा है।

शिक्षा को व्यवस्था के दायरे से अलग करके देखना अनुभूतियों की दुनिया में खो जाना है। एक तरह से समय की बर्बादी ही है वो। सिवाय इसके कि हम सोच के चलें कि हम शिक्षा को केवल एक आशा के स्रोत में तो याद रखेंगे वरना हम शिक्षा को व्यवस्था के संदर्भ में ही समझेंगे। अगर हम ऐसा करें तो हम शिक्षा की व्यवस्था को समझने के लिए अपनी स्मृतियों का सहारा नहीं लेंगे, जिनमें हमारा बचपन बीता या युवावस्था बीती। उसकी जगह हम आज की परिस्थितियों पर विचार करेंगे। जब हम अपने बच्चे को स्कूल छोड़ने जा रहे हैं तो स्कूल को एक दीवार या गेट के रूप में नहीं देखेंगे, बल्कि उसे एक संस्था के रूप में देखेंगे जो आज एक सामाजिक परिदृश्य से जुड़ी हुई है और उससे संचालित भी है। हम अपने पुलों को पहचानेंगे जो इस संस्था और आज के समाज के, आज की राजनीति के, आज की अर्थव्यवस्था के, आज बन रही दुनिया के बीच बन रहे जो पुल हैं, उनको मैं पहचान पाऊंगा जब मैं अपने बच्चे को आज स्कूल छोड़ने जाऊंगा। या आज मैं जब किसी विश्वविद्यालय में पढ़ाऊंगा तो मैं आज इस विश्वविद्यालय को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों के संदर्भ में इसको समझूंगा। यह चुनौती रखती है हमारे सामने शिक्षा की यह दूसरी प्रयोग भूमि। यह निश्चित रूप से बड़ी चुनौती है।

शिक्षा के विचार वाली जो प्रयोगभूमि है। उसके मुकाबले यह बड़ी प्रयोगभूमि है, शिक्षा की एक समझ बनाने के लिये। या शिक्षा को लेकर एक समझदारी बनाने के लिए एक बड़ी भारी प्रयोगभूमि है कि हम शिक्षा को एक खिड़की के रूप में इस्तेमाल कर सकें। अपने समय के लिए इतिहास को देखने-समझने के लिए। और यह खिड़की बड़ी रोचक खिड़की है। इसलिए क्योंकि यह खिड़की एक प्रकार का सामाजिक ज्योतिष है।

आप आज का अखबार पढ़ रहे हैं तो आपको बहुत से बहुत आज के बारे में कुछ पता लग रहा है। अखबार में जो तारीखें दी हुई हैं। 11 दिसंबर को निकलेंगे चार-पांच राज्यों के चुनाव परिणाम तो आप कह सकते हैं कि दिसंबर का इतिहास मुझे आज का अखबार बता रहा है। बहुत से बहुत यह हमें चार-पांच महीनों का इतिहास बता रहा होगा। इससे ज्यादा आज का अखबार नहीं बता सकता। अगर आप ज्योतिष में विश्वास करते हैं तो ज्योतिष लोग बताते हैं कि आपका आगे चल कर क्या होगा। बहुत कुछ बताने का दावा करते हैं पर जब तक आप वहां पहुंचेंगे, तब तक वह ज्योतिष वहां होगा या नहीं होगा कि तब आपने हमें ऐसा बताया था मैं 2025 में स्वस्थ रहूंगा और देखिए मुझे कौन सी बीमारी हो गई। उस दिन आप उस ज्योतिष को ढूंढ़ेंगे तो वह कहेगा कि उसका संकेत तो था। लेकिन वह संकेत इतना प्रबल नहीं था, जो आपने बना दिया। मैंने कहा था कि आप यह-यह व्रत करें, पूजा करें तो इससे आप उबर सकते हैं। पर आप तो मानते ही नहीं हैं। आप तो कुछ ज्यादा ही लौकिकतावादी आदमी हैं। तो ज्योतिषी से आप उलझ नहीं सकते।

शिक्षा जो एक तरह का सामाजिक ज्योतिष देती है, वह ज्यादा वैज्ञानिक है। आप जब किसी स्कूल में कुछ समय बच्चों के बीच अगर बिताएं तो आप आज से 20 साल बाद हमारा देश कैसा होगा, उसकी कल्पना कर सकते हैं। और सिर्फ कल्पना ही नहीं, अगर आप व्यवस्थित रूप से सोचते हैं, तो आप बहुत कुछ बता सकते हैं कि आज से 15-20 वर्ष बाद कुरुक्षेत्र कैसा होगा,

हरियाणा कैसा होगा और देश कैसा होगा। दुनिया कैसी होगी, ऐसी बहुत सी चीजें आप बता सकते हैं। यह मैं कोई जज्बाती बात नहीं कर रहा हूँ कि उस गाने की तरह से- नन्हें मुन्ने बच्चे तेरी मुट्ठी में क्या है। वह मसला नहीं है ये। आप बहुत तरह की गणनाएं कर सकते हैं। कई तरह के विश्लेषण कर सकते हैं और कह सकते हैं कि हां ये इस समय जो शिक्षा संस्था काम कर रही है, ये इसका ऐसा स्वरूप बनाएगी समाज का मनुष्य का। रघुवीर सहाय की एक बहुत मशहूर कहानी है। उनका एक कहानी-संग्रह है- आदमी जो हम बना रहे हैं। एक स्कूल में एक दोपहर खर्च करें तो थोड़ा-बहुत अंदाजा लग जाएगा कि हम कैसा आदमी बना रहे हैं। या किसी बोर्ड के परिणाम पर थोड़ा विचार करें। कुछ पाठ्य पुस्तकें पढ़ें। उनके समय कुछ समय बिताएं। शिक्षकों से चर्चा करें तो कुछ-कुछ आप बता सकते हैं कि 20वर्ष बाद का भारत कैसा होगा। शिक्षा एक प्रकार का सामाजिक ज्योतिष देती है।

इस संदर्भ में व्याख्यान के शीर्षक को हम समझ सकते हैं- शिक्षा के क्षेत्र में दिशा का प्रश्न। सिर्फ यह नहीं है कि हम शिक्षा को किस दिशा में मोड़ें। यह तो आप कह सकते हैं कि व्यर्थ का प्रश्न है। क्योंकि शिक्षा हमारे-आपके किसी एक के हाथ में नहीं है। यह बहुत भ्रामक सा विचार है कि प्रचारात्मक विचार है ये। इस शीर्षक का अर्थ यह है कि शिक्षा में कोई दिशा कैसे उभर रही है क्या हम उसे पहचान सकते हैं। आज पहचान सकते हैं। 20 वर्ष बाद यह शिक्षा कहां पहुंचेगी। खुद ही नहीं पहुंचेगी, साथ में समाज में भी एक प्रभावशाली कारक के रूप में काम कर रही होगी और इसका शिक्षा का एक प्रभाव काफी महत्वपूर्ण प्रभाव है। समाज, अर्थव्यवस्था, साहित्य हर चीज पर दिखाई देगा।

शिक्षा एक ऐसा क्षेत्र ही है ये जब इसे व्यवस्था के रूप में देखते हैं, जहां लगातार अंत:क्रियाएं हो रही हैं। यह अंत:क्रियाएं हो रही हैं- शिक्षण, पाठ्यक्रम एक तरफ हैं तो दूसरी तरफ हैं ऐतिहासिक, राजनैतिक व आर्थिक प्रक्रियाएं। इन सबके बीच में एक पुल और उसका नाम है शिक्षक। कई बार उसे पता नहीं है कि मैं एक पुल हूँ, जो दिए गए ज्ञान और पाठ्यक्रम को जोड़ रहा हूँ आज की राजनैतिक परिस्थिति से, आर्थिक प्रवृत्तियों से। आने वाले समय में उभरने वाली प्रवृत्तियों से भी जोड़ रहा हूँ। मैं एक कड़ी हूँ। अगर मैं एक चैतन्य शिक्षक नहीं हूँ तो मैं सोचूंगा कि मैं सिलेबस पढ़ा रहा हूँ बस। अच्छे से अच्छे तरीके से पढ़ाता हूँ। इससे ज्यादा क्या करूं। पर यह सिलेबस स्वयं क्या खास प्रकार की राजनैतिक आर्थिक प्रवृत्तियों से संचालित है।

सिलेबस ज्ञान का एक स्वरूप है जो शिक्षा व्यवस्था के भीतर उभरा है। निर्धारित हो गया है और वह निरंतर अपने समय के इतिहास से प्रभावित हो रहा है। उसके भीतर भी आप ढूंढ़ सकते हैं, उन चिह्नों को, जो चिह्न इतिहास के भीतर रहते हैं। आर्थिक शक्तियों के चिह्न। राजनैतिक वर्चस्व के चिह्न। सामाजिक संरचना के चिह्न। आदमी-औरत के संबंधों की संरचना के चिह्न। ये चिह्न पाठ्यक्रम में समाहित ज्ञान में रहते हैं, हम उन्हें पहचानें या ना पहचानें। ये हमारा एक उत्तरदायित्व बनता है।

अगर हम शिक्षा का दूसरे वाला प्रयोग क्षेत्र चुन रहे हैं आज के विषय के विचार-विमर्श के लिए तो यह हमारा दायित्व बनता है कि हम इन चिह्नों को पहचानें। क्योंकि इन चिह्नों की मदद से ही हम शिक्षा का सामाजिक ज्योतिष पढ़ सकते हैं कि वह शिक्षा कहां जा रही है। वरना आज के समय में तो यदि आप जज्बाती मूड़ में हों तो आप कहेंगे आज कल शिक्षा ही कहां है। आजकल तो भगदड़ है। आजकल तो व्यक्तिवाद की दौड़ चल रही है। आज कल तो भौतिकवाद का युग है। या आजकल तो अपनी अपनी ढ़पली बजाने के लिए, अपने स्वार्थों की सिद्धि के लिए, इस तरह की आप दस-बारह जो बूढ़े लोगों को शोभा देने वाली बातें करके गुजर लेंगे और जो युवा हैं वे हॉल छोड़ कर निकल लेंगे कि ये तो ऐसी बातें करते हैं। इनको तो सुनना ही बेकार है।

अगर आप शिक्षा की व्यवस्थापरक चुनौतियों से गुजरने में संकोच करेंगे तो आप अपने विवेचन के जरिये जो दिशा शिक्षा में उभर रही है, कुछ हद तक उभरी हुई है, कुछ और प्रखर होगी, इतिहास क्रम के चलते अगले कुछ वर्षों में, 15-20, 50 वर्षों में उस दिशा का संधान करने में, संधान का आशय है पहचान करने में असमर्थ रहेंगे। ऐसी स्थिति में शिक्षा का ज्योतिष आपके लिए व्यर्थ हो जाएगा। यह बहुत ज्यादा कठिन काम नहीं है, जिसके बारे में मैं अर्ज कर रहा हूँ।

कौन से वो चिह्न हैं, जिनकी मदद से हम आज शिक्षा की दिशा ही नहीं, बल्कि शिक्षा में समाज की दिशा का निर्धारण कर सकते हैं। यानी कि शिक्षा के जरिये हम समाज कहां जा रहा है, इतिहास कैसा बन रहा है हमारे समय में, हम इसको किसी हद तक पहचान सकते हैं। इसका उद्देश्य क्या है। इसका उद्देश्य यही है कि हम इतिहास को उसके बन जाने से पहले पहचान लें। जिससे हम उसको उस तरह ना बनने दें, जैसा वो अपने आप बनता। या आज उपस्थित वर्चस्व की संरचनाओं के प्रभाव में बनता। हम उसे थोड़ा पहले पहचान लें तो हम भी उसका थोड़ा प्रभावित कर सकते हैं। प्रो. ग्रेवाल की स्मृति में इससे ज्यादा गहन विचार शायद कोई नहीं हो सकता कि हम उत्सुक हों आज बनते इतिहास को समझने के लिए। उसका एक बहुत बड़ा माध्यम

साहित्य भी है, जो उनका अपना एक क्षेत्र था। और साहित्यकार इतिहास पढ़कर भी, आज का साहित्य पढ़कर भी हम इतिहास की दिशा पहचान सकते हैं। उनके आलोचनात्मक लेखन को पढ़कर। ऐसा ही कुछ हम शिक्षा के संदर्भ में भी कर सकते हैं। आज हम तय कर लें कुछ। आज की जो परिस्थिति है उसका आकलन करने के लिए जितना भी हमारे पास समय है, उसमें अगर हम एक-दो चिह्नों पर भी बात करें तो वह पर्याप्त होगा। क्योंकि चिह्न तो अनेक हैं। पंत जी की कविता अक्सर मुझे घेर लेती है ऐसे अवसरों पर। उन्होंने परिवर्तन पर कविता लिखी है-

लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिन्ह निरंतर
छोड़ रहे हैं जग के विस्तृत वक्ष स्थल पर।

इनमें से कुछ चिन्ह लक्ष, यानी जो दिखाई देते हैं और कुछ अलक्षित हैं, दिखाई नहीं देते हैं। जो थोड़े-थोड़े समय बाद उभरेंगे, जब उभरेंगे तो बहुत देर हो चुकी होगी। क्योंकि फिर हम कुछ कर नहीं पाएंगे। तो चिन्हों में तो उनको पकड़ना बहुत महत्वपूर्ण होता है, जो कुछ समय बाद प्रकट होते हैं। जैसे कोई विश्वविद्यालय आज नष्ट हो रहा है। आप बड़े दुखी हैं। कुछ समय पहले एक कुलपति मेरे दिल्ली विश्वविद्यालय में आए। उन्होंने हमारे देखते ही देखते हर एक-एक ईंट उखाड़कर फेंक दी। बहुत से लोगों को लगा कि ये आदमी नष्ट कर रहा है। जबकि विश्वविद्यालय का विनाश तो बहुत पहले शुरू हो चुका था। पर हम उन चिन्हों को पहचान नहीं पाए थे, जब वो आया तो उसने एक महान खलनायक की तरह चारों ओर तबाही मचा दी। खलनायक भी तभी पहुंचता है ऐसी जगहों पर, जब ऐसी जगहें खलानायकों के उपयुक्त हो चुकी हों। ऐसी स्थिति में वो सज्जन लोग कहां थे मेरे जैसे जो उस समय जी रहे थे, जब बेहतर नायक हुआ करते थे विश्वविद्यालयों के। परिस्थितियां तो उसी समय बन रही थी। यह तो जो मसला है शिक्षा का, उसमें चिन्ह हैं। कुछ उजागर हैं, कुछ नहीं है। एक-दो चिन्हों को लेकर आप चल सकते हैं। उन चिन्हों की मदद से आप दिशा के प्रश्न को थोड़ा सा बेहतर समझ के और फिर इसको उपसंहार तक पहुंचा सकते हैं।

एक बहुत बड़ा सवाल है, जो शिक्षा के दायरे में लाए जाने पर कुछ अकेला सा पड़ जाता है। आज के समय में बहुत से लोग उस अकेले से सवाल को लेकर छाती पर चिपकाए से मिल जाते हैं। हालांकि वो सवाल भी कुछ मर सा गया है। उस सवाल को जीवित रखने वाले भी अब मर चुके हैं या वृद्ध हो चुके हैं। उस सवाल में ऐसा लगता है कि बहुत ज्यादा सामाजिक जान नहीं बची है। लेकिन वो शिक्षा का एक बड़ा सवाल था। आज भी है। उस सवाल के जरिये चिन्ह है, जिसको आप किसी भी जगह इस्तेमाल कर सकते हैं। उस पड़ताल के लिए जिसका आमंत्रण मैंने आप को दिया है। शिक्षा की व्यवस्थापरक प्रयोगभूमि की पड़ताल के लिए। आपमें से बहुत से लोग शायद अनुमान लगा रहे होंगे कि ये कौन सा सवाल उठाने जा रहे हैं। एक चिर-परिचित सवाल है और सौ-सवा सौ साल से शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हुआ हो जो मेरी तरह से शिक्षक कहलाता हो जिसने उस पर कुछ ना कुछ विचार ना किया हो, बोला ना हो। या फिर नेता, महापुरुष नहीं हुआ होगा, जिसने इस सवाल को नहीं छेड़ा हो। मजे की बात ये है कि उस सवाल पर हर एक महापुरूष सहमत है। उस सवाल पर संविधान भी सहमत है। उस सवाल पर दुनिया में कोई असहमति नहीं है। लेकिन अगर कोई असहमत है तो वह परिस्थिति है। उस सवाल का हर जगह हम उस सहमति से इसका एक विपरीत रिश्ता देखते हैं। आज हम कहीं भी हों, कुरुक्षेत्र में हों, दिल्ली में हों, कहीं भी हों। इस सवाल से जुड़े हुए सहमति के जो विचार हैं, उनका विपरीत देख सकते हैं। यह चिन्ह है - भाषा का।

शिक्षा के संदर्भ में भाषा एक बहुत ही केन्द्रीय स्थान रखने वाला क्षेत्र है। और शिक्षा के जरिये भविष्य की परिकल्पना करनी हो। शिक्षा में अगर आपको कुछ जांच करनी हो कि शिक्षा का स्तर कैसा है। शिक्षा कैसी दी जा रही है? उन सबमें मेरी आज रुचि नहीं है, मेरी रुचि तो है शिक्षा में किसी चिन्ह को उठा कर आज बनते हुए इन्सान व आज बनते हुए समाज के भविष्य को उसकी उस दिशा को हम पहचान सकें तो मेरी दिलचस्पी तो सिर्फ इसमें है। इसके लिए बहुत ज्यादा खुलासा करने की जरूरत नहीं है। भाषा वह क्षेत्र है जिसके जरिये शिक्षा समाज की पहले से चले आ रहे विघटन और विभाजन को मजबूत कर रही है। शिक्षा कुछ अलग से नहीं कर रही है। शिक्षा विघटनकारी ऐतिहासिक प्रवृत्तियों में अपनी छोटी सी भूमिका निभा रही है। और उस भूमिका को चूंकि स्पष्टत: पहचानने की जगह हम जज्बाती अर्थ में ही लेते हैं और शिक्षा को हम किसी और उद्देश्य के लिए इस्तेमाल करने में असमर्थ हैं। लक्षणों में ही खो जाते हैं, जब हम इस विषय को उठाते हैं।

क्या लक्षण हैं? जैसे कि ये लक्षण हैं कि भई अंग्रेजी माध्यम स्कूल गांव-गांव में खुल रहे हैं। शिक्षा का निजीकरण हो रहा है। या नर्सरी में ही अब अंग्रेजी पढ़ाई जा रही है इत्यादि। ये लक्षण हैं केवल। यदि इनकी गहराई में जाना है तो इन लक्षणों से काम नहीं चलेगा। क्योंकि लक्षण तो व्हाट्सअप की बहस को जन्म दे सकते हैं। या अगर आपने इस बहस को जन्म दिया तो सौ -पचास लोग फेसबुक पर कुछ उगल कर कुछ शांत हो जाएंगे। ट्वीट कर देंगे इधर-उधर कि बकवास है ये - पुराने समय की बात कर रहे हैं। आज तो अंग्रेजी में ही काम हो रहा है पूरा। आज तो

उसी विषय में सभी को शिक्षा मिलनी चाहिए।

यह जो पूरा मसला है, ऐसा भी नहीं कि बहुत पहले से किसी ने नहीं पहचान रखा था। आप अगर फणीश्वरनाथ रेणु का उपन्यास 'मैला आंचल' पढ़ें तो उसमें एक चरित्र है। मैला आंचल 50 के दशक के शुरूआत का उपन्यास है। एक चरित्र है जो खुद पढ़ा लिखा नहीं है। एक संवाद में वह शुरू में ही कहता है कि भैया एक समय आएगा जब हर एक झोंपड़ी से ए बी सी की झंकार सुनाई पड़ रही होगी। कितना पहले उन्होंने यह अनुमान लगाया है कि ऐसा होने जा रहा है। रेणू जैसा संवेदनशील उपन्यासकार इसको देख सकता था, हालांकि 50 के दशक में अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों की संख्या बहुत कम थी। फिर भी वो देख सकते थे कि किधर जा रहा है देश।

यदि आज हम विचार करें तो आप कह सकते हैं कि हां यह हमारे समय का बहुत बड़ा सत्य है कि जो विज्ञान की सबसे बड़ी मान्यता है, उसका निषेध शिक्षा व्यवस्था में हो रहा है। यह मान्यता क्या है? यह मान्यता है कि अगर विज्ञान को, समाज विज्ञान को या ज्ञान के किसी भी क्षेत्र को समझना है, अच्छी तरह समझना है तो उसके लिए अपनी भाषा से बेहतर कोई भाषा नहीं हो सकती। अब ये बात कहते हुए, आप कहें कि कृष्ण कुमार तो हमें समकालीन लगते थे, लेकिन अब लगता है कि बहुत पहले के आदमी हैं ये। पुराने पड़ गए हैं। क्योंकि यह बातें पुरानी पड़ गई हैं। हमारे देश के जो बेहतरीन स्कूल हैं, जहां सबसे ज्यादा फीस भी लेते हैं, जहां शिक्षक को भी सबसे ज्यादा तनख्वाह मिलती है। जहां के बच्चे देश की सबसे बड़ी मान्य संस्थाओं में प्रवेश पाते हैं। वो सारे स्कूल इस मान्य विचार का निषेध करके ही ऐसा कर पा रहे हैं। कोई हिन्दी माध्यम स्कूल आज यह दावा नहीं कर सकता कि वह अपने बच्चों को आईआईटी में भेज पाएगा। यह दावा करने के लिए तो कोई अंग्रेजी माध्यम स्कूल ही होगा।

एनसीईआरटी वैसे तो अपनी सारी किताबें - हिन्दी, अंग्रेजी व उर्दू तीन भाषाओं में छापती है। पर अगर आप उनके मुद्रण संख्या और बिक्री संख्या की तुलना करें तो जो अंग्रेजी संस्करण की बिक्री हिन्दी संस्करण से करीब 25 गुणा ज्यादा होती हैं और उर्दू संस्करण से 500 गुणा ज्यादा होती है। कोई तुलना ही नहीं है। क्योंकि हिन्दी संस्करण की प्रतियां बिकती नहीं हैं। सीबीएसई क्या कोई स्कूल हिन्दी संस्करण नहीं खरीदता। पहले नवोदय स्कूल खरीद लेते थे हिन्दी माध्यम की किताबें। लेकिन केन्द्रीय विद्यालय या हिन्दी भाषी राज्यों के स्कूल अंग्रेजी माध्यम की किताबें ही पसंद करते हैं। और अब तो स्थापित ही हो चुका है कि अगर आप आज की बनती हुई व्यवस्था में आगे बढ़ना चाहते हैं तो हिन्दी उपयुक्त माध्यम नहीं है।

मैं पिछली बार इन्द्री गांव में बोलने के लिए गया था कि एक महिला हिन्दी में पीएचडी करने के बाद जब विवाह के स्थान पर पहुंची तो इस कारण उसका विवाह नहीं हो सका, जिस परिवार में होना था, उन्होंने कहा कि हिन्दी वाली हमें नहीं चाहिए। यह जो पूरा माहौल है, यह इस व्यवस्था की देन है। यह पूरी तरह गलत है। इसे आप निजीकरण से जोड़ रहे हों, आप थोड़ा आगे चलेंगे तो कुंडली गांव आएगा दिल्ली से पहले, जहां हमारे देश का सबसे सम्मानित निजी विश्वविद्यालय है - अशोका विश्वविद्यालय। बहुत ऊंची फीस लेता है। देश के बहुत अच्छे शिक्षक वहां पढ़ा रहे हैं। श्रेष्ठ इतिहासकार और विषयों के विद्वान वहां पढ़ा रहे हैं, जो दूसरे अच्छे विश्वविद्यालयों से इस्तीफा देकर वहां गए हैं। जिसके कुलपति बहुत विचारशील व्यक्ति हैं। तो आप कहेंगे कि यह विश्वविद्यालय बहुत अच्छा है। भले ही वह बहुत ऊंची फीस ले रहा है। उसका माध्यम पूरी तरह से अंग्रेजी है। क्या ये उसकी देन है। या यह सिर्फ एक लक्षण है। और अगर लक्षण है तो किस चीज का लक्षण है। अगर हम आज प्रोफेसर ग्रेवाल की स्मृति में शिक्षा को चिन्हशास्त्रीय विवेचना के लिए इस्तेमाल करने आए हैं तो हमें पूछना चाहिए कि यह किस चीज का चिन्ह है। इस चिन्ह का इतिहास क्या है और इस चिन्ह का भविष्य क्या है। यह चिन्ह है भारत के समाज में लगातार विभाजित होते हुए वर्गीय संबंधों का, लगातार बनती हुई सामाजिक दूरियों का, जो आज से नहीं बन रही हैं। ये सामाजिक दूरियां कई रूप ग्रहण करती हैं। गांव-शहर का रूप ग्रहण करती हैं। हिन्दी अंग्रेजी माध्यम का रूप ग्रहण करती हैं। कई और रूप भी ग्रहण करती हैं ये। लेकिन यह मूलत: वर्गीय विभाजन दिखाती हैं और ये विभाजन कई और संदर्भों के बीच निरंतर बढ़ता चला गया है। निरंतर बढ़ता जा रहा है। इसके भीतर ही आकांक्षाएं महत्वाकांक्षाएं रूप लेती हैं, प्रकट होती हैं। और यह विभाजन पहले से अधिक है।

अगर भारत आज आर्थिक रूप से तीव्र दर से बढ़ रहा है, जिसे अर्थशास्त्री कहते नहीं अघाते कि 60 के दशक में हमारी विकास दर तीन प्रतिशत थी, आज सात प्रतिशत से ऊपर है। कई लोग कहते हैं आठ प्रतिशत है। इस विकास दर से अभिप्राय देश की बढ़ती हुई आय है, उसी विकास दर से विघटन भी बढ़ रहा है देश का। सामाजिक दूरियां बढ़ रही हैं। यह तथाकथित आर्थिक विकास का ही एक और रूप है। उसी का एक और प्रतिबिंब है। ऐसा कोई भी व्यक्ति, जिसकी समाज के भविष्य के प्रति चिंता है, उसके लिए चिंता का कारण होना चाहिए। इसमें हम यह नहीं कह सकते कि नहीं, यह तो होता ही है, स्वाभाविक रूप से होता है। हां, बहुत से लोग कहते हैं कि ये तो यूरोप में हुआ, जब वहां

विकास दर बढ़ रही थी, वहां हुआ। अमेरिका में हुआ तो यहां कैसे नहीं होगा, होगा। क्योंकि यह समझना चाहिए इतिहास को लेकर कि इतिहास हर समाज में कुछ अलग रूप लेकर प्रकट होता है। जब इतिहास हम पढ़ते हैं दुनिया का, दुनिया के देशों का तो हम देखते हैं कि ये जो प्रश्न है सामाजिक टकराव और वर्गीय विभाजन अलग-अलग रूपों में दुनिया के देशों के इतिहास में प्रकट होता है। कहीं ये युद्ध लाता है, तबाही लाता है तो कहीं ये राज्य की व्यवस्था में ही कुछ परिष्कार लाता है। कहीं ये क्रांति लाता है, तो कहीं ये समझौता लाता है। कहीं ये क्रांति के बाद प्रतिक्रांति लाता है और क्रांति ना चला पाने की स्थिति लाता है। और कहीं ये इतने समझौते लाता है कि फिर से एक बार विषमताकारी व्यवस्था हावी हो जाती है।

हम जिस दौर से इस समय गुजर रहे हैं, उस दौर में भी हमें इस बात को चिह्नित करना होगा कि हम एक समाज के रूप में कैसा बन रहे हैं। और आज से बीस साल बाद का समाज कैसा होगा? बहुत सी चीजें किसी स्कूल में आप 10-15 मिनट भी बिताएं तो समझ जाएंगे। बहुत सी चीजें 15-20 साल में हमारे सामने भी उभरीं। ये स्पष्ट रूप से आप कह सकते हैं कि बहुत से लोग जो एक ही भाषा में दक्षता महसूस करेंगे, ऐसे लोगों की संख्या बढ़ती जाएगी। वह भाषा अगर अंग्रेजी है, तो वो अंग्रेजी में ही अपना सारा काम कर पाएंगे। और अपने जैसे लोगों के बीच ही रहना पसंद करेंगे और जो उस दायरे में नहीं आते, उनको वो हिकारत की दृष्टि से देखेंगे। कभी-कभार थोड़ा-बहुत उनसे वे संपर्क रखेंगे। लेकिन वो उनकी हैसियत से बहुत दूर होंगे। यह जो दृश्य है, ये किस तरह की विसंगतियां उत्पन्न करेगा।

अगर आपने इस समय का जायजा लेना है तो एक फिल्म इसी सप्ताह जारी हुई है - सुई धागा। उसे देखिए तो आप समझ पाएंगे कि इस समय भारत में गरीबों और उद्योगों के मालिकों के बीच किस-किस तरह का फासला है। वह जीवन में किस तरह से प्रकट होता है। अगर कोई व्यक्ति निचली सामाजिक हैसियत से निकल कर अपनी हैसियत सुधारने का मान रखता है तो उसके रास्ते में किस-किस तरह के संकट आते हैं। यह चीजें इस फिल्म को देखकर समझ में आता है। यह तो एक फिल्म है। सामाजिक विघटन की कहानी नहीं है ये बल्कि सामाजिक संयोजन का एक स्वप्न है। इस स्वप्न की भी एक कीमत है। अगर संयोजन होता भी इस फिल्म में तो एक कीमत चुका कर होता है। क्योंकि यह एक तरह का रोमांटिक संयोजन है। वह कोई न्यायसंगत आधार पर नहीं हो पाता। तो आप कह सकते हैं जज्बाती संप्रेषणीयता उसमें है। यह जो पूरा प्रश्न है कि कोई समाज पूरी तरह से विघटित हो रहा है ओर विघटित होता है वह कहां जाकर रूकेगा, इसे कोई समझ नहीं सकता। क्योंकि विघटन अपने आप में सामाजिकता को लहुलुहान करने वाली शक्ति है। हिंसा को तो जन्म देती ही है साथ में समाज की सामाजिक एकाग्रता को भी खंडित करती है। सुनने-सुनाने के माहौल को भी नष्ट करती है।

जब भाषा का ही इतना अंतर होगा कि हमें हर बात को समझने के लिए या तो किसी अनुवादक की जरूरत होगी। और या इतना अनुवाद कौन करे। ये जो पूरा प्रसंग है कि हम भारतीय भाषाओं और अंग्रेजी की समकक्षता को स्थापित करें। कम से कम 70 साल से तो ये सरकार ही अनुवाद करती रही और हमें पता है कि वह अनुवाद कहां तक पहुंचा। और वह प्रयास भी अब 80 के दशक के बाद लगभग छूट सा गया है। यह मान लिया गया है कि जो थोड़े से भी बच्चे, जिनमें बहुत प्रतिभा दिखती है, जो मेहनती हैं बहुत, उनके लिए अंग्रेजी माध्यम का एक सैक्शन सरकार के अपने स्कूल बना देंगे। और उसमें वे पढ़ेंगे। वैसे भी नवोदय, केन्द्रीय विद्यालय और या कि मॉडल स्कूल जो कई राज्यों ने खोले हैं, उन्होंने भी यह मान लिया है कि भाषा के मुद्दे पर अब और प्रतिरोध करना व्यर्थ ही है। ये समर्पण और प्रतिरोध का जो विकल्प है, यह एक तरह से मान लिया गया है कि समर्पण ही श्रेष्ठ है। क्योंकि समर्पण के जरिये हम बहुत सी महत्वाकांक्षाओं को पैदा कर सकते हैं। क्योंकि भाषा अपने आप में एक प्रतिरोध का विषय रही है पिछले डेढ़ सौ वर्ष के इतिहास में। जिस भाषा को में मैं बोल रहा हूँ, वह प्रतिरोध की ही भाषा है- हिन्दी। एक बड़े प्रतिरोध की भाषा के रूप में ये उभरी और आज भी इसका अगर कहीं कोई जीवित रूप है तो वह यही है। अगर आप पूछें कि इस भाषा का साहित्य रचने वालों में श्रेष्ठतम साहित्य किन्होंने रचा तो आप यही कहेंगे कि उन्होंने रचा जो सबसे ज्यादा प्रतिरोधी थे। अपने समय के समाज के, अपने समय की परंपराओं के। आप वो ही नाम अंत में लेंगे- निराला, रेणू का, मुक्तिबोध का। ऐसे नाम लेकर ही आप कहेंगे कि इनके जरिये ही यह भाषा यहां पहुंची है कि आज हम एक घंटा इसमें विचार कर पा रहे हैं। आराम से विचार कर पा रहे हैं। इस भाषा के जरिये जो एक समुदाय जैसा इस हाल में बन रहा है। यह प्रतिरोध का इतिहास है, जोकि इस भाषा में है। अब अगर आज यह भाषा समर्पण का विषय बन जाए, जोकि बन ही गई है एक तरह से। हमने मान लिया है। जैसे आप नवभारत टाईम्स पढ़ें या कि आप दैनिक भास्कर पढ़ें। ऐसी कोई शीर्षक पंक्ति से आपको चौंकना नहीं चाहिए कि स्टूडेंट और पेरेन्टस प्रोसेशन लेकर पहुंचे प्रिंसिपल के पास। ये एक शीर्षक हो सकता है। क्योंकि स्टूडेंटस पेरेंटस ये सब शब्द मान लिया गया है कि अब हिन्दी को ग्रहण करने ही पड़ेंगे। क्योंकि वो दिन गए जिनको हम विद्यार्थी कहते

थे, अभिभावक कहते थे। जो पाठक है, उस तक पहुंचने के लिए अब सबसे ज्यादा बिकने वाले अखबार को हिन्दी के शब्दों का प्रयोग करने से अब फायदा नहीं होगा, अब यह मान लिया गया है। स्वयं आकाशवाणी ने मान लिया है। जोकि आकाशवाणी नहीं थी वो भूमिवाणी थी भारत की, जो मानती थी कि हां आकाशवाणी के जरिये इतिहास रचा जाएगा। पर आज आकाशवाणी भी व्यवसाय के आगे व्यावसायिकता के आगे घुटने टेक चुकी है। आप चौबीस घंटे आकाशवाणी सुन लीजिए, अगर पांच मिनट भी उसमें कोई विचार हो जाए, तो आप कहेंगे कि भई आज तो मिठाई बांटनी चाहिए। आकाशवाणी आज बहुत ही उथली वाणी है।

किसी भी संस्था को देखें जोकि भाषा का संचरण करती है। आप देखेंगे कि उसमें प्रतिरोध का क्षेत्र समाप्त हो चुका है। भाषा विघटन के सामने समर्पित हो चुकी है। यह वैसे तो बहुत ज्यादा चिंता जगाने वाला विषय नहीं है, अगर आप शिक्षा व्यवस्था को केवल आर्थिक उद्देश्यों से जोड़ेंगे। लेकिन अगर आप शिक्षा को समझ से जोड़ेंगे तो फिर ये चिंता का विषय है। और फिर आपके सामने तमाम पैमाने आएंगे। कि इतने अच्छे-अच्छे आईआईटी व आईआईएम हैं। क्यों दुनिया में हमारा नाम नहीं है। अंत में अपना नाम कमाने के लिए हम दो चार पहलवानों पर ही क्यों निर्भर हैं। क्यों नहीं हमारे वैज्ञानिक कोई बड़ा काम कर पाते। अब जाहिर है कि इसका कोई सरल उत्तर नहीं है। लेकिन इसका एक उत्तर ये जरूर है कि अगर किसी समाज में ज्ञान का काम पूरी तरह से ऐसी भाषा में होने लगे जो उस समाज के माहौल की भाषा नहीं है। जहां वो विकसित नहीं हुई तो फिर शिक्षा के माध्यम से पैदा की जाने वाली समझ का स्तर बहुत गहरा नहीं हो सकता। कामचलाऊ तो होगा, बल्कि दक्षता का भी हो सकता है। हो सकता है उसमें ऐसे विद्वान भी हो जाएं जो बहुत अच्छा काम कर सकें, किसी के निर्देशन में। किसी बड़ी कंपनी में लगकर या किसी अमेरिकी विश्वविद्यालय में पहुंच कर वो बहुत बढ़िया काम करके दिखाएं, लेकिन वो कुछ रच सकेंगे, कुछ ऐसा कर सकेंगे जो नया हो। इसकी संभावना कम रहेगी, अगर शिक्षा का पूरा काम उन भाषाओं से हट जाए जो समाज के अपने सामाजिक-सांस्कृतिक माहौल में जीती हैं तो ये बहुत बड़ी लाक्षणिक खोज है, जिसके जरिये हम जान सकते हैं कि हम कहां पहुंच पाए हैं।

शिक्षा की दिशा निर्धारित करना राज्य का काम है। तो यह उसी की कोताही है कि राज्य गड़बड़ कर रहा है, उसके अफसर, मंत्री, उसके नेता शिक्षा को राजनीति का विषय बना रहे हैं। यह कहना भी विश्लेषण की जो गहराई है, उससे हमें हटा लेगा। क्योंकि राज्य भी आखिर एक सामाजिक संस्था है। अगर आप उसकी प्रवृत्तियों पर गौर करेंगे तो आप पाएंगे वह स्वयं इस विघटन का शिकार है। और वह समय-समय पर शिक्षा के अंदर कुछ ऐसे पुल बनाने की कोशिश करता रहता है जो किसी हद तक समाज को संयोजकता दे सके।

शिक्षा का अधिकार का कानून बना है। 6 से 14 वर्ष के बच्चों की शिक्षा का। उस क्षेत्र में जो दूरी है - निजी और सरकारी स्कूल की। उस दूरी को पाटने का काम इस कानून के तहत राज्य ने कोशिश की है। एक पुल बनाया है। आप कह सकते हैं कि ये पुल तो बहुत संकरा है और उस पुल पर भीड़ मची हुई है। यह पुल है कमजोर आर्थिक हैसियत के बच्चों को फीस लेने वाले प्राईवेट स्कूलों में 25 प्रतिशत आरक्षण का पुल है। बहुत से लोग नाराज हैं कि 25 प्रतिशत से क्या होगा। कम से कम 50 तो होता। उनसे पूछिये कि 25 प्रतिशत भी गवारा नहीं हो रहा है प्राईवेट स्कूलों में पढ़ाने वालों को। पूरे देश में एक बेचैनी सी मची हुई है। मामला सुप्रीम कोर्ट तक तो इस कानून के बनने के तीन वर्ष बाद ही पहुंच गया था कि यह बाध्यता हटनी चाहिए, इससे शिक्षा का स्तर और ज्यादा गिरेगा। बड़ा अस्पष्ट सा तर्क है ये कि अगर गरीब बच्चे हमारे बच्चों के बीच बैठेंगे, थोड़ी ही संख्या में बैठेंगे, तो भी शिक्षा का स्तर गिर जाएगा। यह तर्क था, सुप्रीम कोर्ट ने 2012 के इस तर्क को खारिज किया। इसके बाद नए-नए तरीकों से उस कानून को बदलने की कोशिश हो रही है। उसकी काट भी पैदा हो रही है और हरएक प्राईवेट स्कूल, जो थोड़ा सा भी सम्मान रखता है, वो अपने ढ़ंग से कोशिश करते हैं कि 25 प्रतिशत का प्रबंध इस तरह से किया जाए कि सांप भी मर जाए और लाठी भी ना टूटे। कोई बहुत ज्यादा हमारे माहौल पर असर ना हो।

स्कूलों को डर लगता है कि अगर गरीबों के बच्चे, भले ही थोड़ी सी संख्या में, इन स्कूलों में आएंगे तो दूसरे बच्चों का क्या होगा? हरियाणा भी उन राज्यों में से है, जहां सामाजिक विभाजन बहुत गहराई से बड़े पैमाने पर हुआ है सरकारी और प्राईवेट स्कूलों के बीच में। और इस विभाजन को कई अनुसंधानकर्ताओं ने केवल वर्ग के ढ़ांचे से ही नहीं, बल्कि जाति के ढ़ांचे से समझा है और पाया है कि सवर्ण जाति की संतान का बहुसंख्यक हिस्सा प्राईवेट स्कूलों में पहुंच गया है और जो निम्न वर्ग हैं, जिनमें दलितों की संख्या सबसे अधिक है। जिनमें बिहार, उत्तर प्रदेश आदि राज्यों से आए मजदूरों की भी बड़ी संख्या है, ये सरकारी स्कूलों में रह गए हैं। सामाजिक विभाजन का सबसे बड़ा प्रमाण है यह। अनोखा नहीं है, लगभग हरएक राज्य की यही स्थिति है। उत्तर

प्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश कहीं भी आप इसको ढूंढ़ सकते हैं। शिक्षकों के बीच भी यही परिस्थिति है कि सरकारी स्कूल का शिक्षक तो कुछ पढ़ाता नहीं है, कोताही करता है। तनख्वाह लेता है, कुछ करता नहीं है। इसलिए उसकी तनख्वाह भी घटाई जा रही है। उसके अधिकार तो पहले ही घटे हुए थे। वो हर तरह के काम करता है। चुनाव अभी आ रहे हैं, तो वो बच्चों को छोड़ कर चुनाव की ड्यूटी करेगा। शिक्षा के प्रति चिंतित लोग यह नहीं पूछेंगे कि यह शिक्षक से क्यों करवाया जा रहा है। हमने मान लिया है कि यह सामाजिक विभाजन एक स्तर पर जरूरी है। क्योंकि इसी से हमारा लोकतंत्र चल रहा है। और जरूरी के अलावा हमने मान लिया है कि यह उचित भी है। यह इतना अनुचित भी नहीं है। आखिर अंग्रेजी पूरे विश्व भर में फैली हुई भाषा है। इंटरनेट पर छाई हुई भाषा है। हम इससे बच कर कहां जा सकते हैं? तो क्या हर्ज है कि हम अंग्रेजी माध्यम में ही बच्चों को पढ़ाएं। वो रास्ता जो द्विभाषा या बहु भाषिकता का रास्ता था, कि अंग्रेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में हमारे बच्चों की दक्षता हो, वो कोई प्राईवेट स्कूल पसंद नहीं करता। उनको लगता है कि सारे के सारे विषय अंग्रेजी में ही नर्सरी से ही शुरू हो जाने चाहिएं। तो ये जो पूरी स्थिति है, इस पर समाज की छाया कहीं इतनी गहरी है कि राज्य स्वयं इस छाया को दूर करने में असमर्थ सिद्ध हुआ है। आप राज्य को इस प्रक्रिया से अलग नहीं कर सकते। राज्य भी इसमें समर्पित हो रहा है। लेकिन कहीं कहीं प्रतिरोध के स्वर जगाता है, कोशिश करता है। आखिर राज्य का काम है कि वो संविधान की दिशा में चलता है तो वो समय-समय पर याद दिलाता रहता है। उसकी कोई ना कोई संस्था याद दिलाती रहती है कि भई आप संविधान से इतना दूर चले गए। कि आप 1980 में 20 किलोमीटर विपरीत दिशा में जा रहे थे, अब आप 55 कि.मी. विपरीत दिशा में जा रहे हो। आगे चलकर हम संविधान से और कितना दूर चले जाएंगे, इसका अनुमान आप शिक्षा की खिड़की में किसी स्कूल में कुछ समय बिताकर कर सकते हैं।

संविधान क्या है - एक दिशा बोध का एक तरह का छोटा-मोटा कुतुबनामा है। अपने पहले ही पेज पर कहता है कि हमें जिस तरह से इतिहास को बनाना है वो काफी परिवर्तन करके ही बनेगा। उसके मुख्य मूल्य ये हैं और ये मूल्य क्या हैं - समता, न्याय और भाईचारा । आप देख रहे हैं कि जहां-जहां इन मूल्यों का थोड़ा बहुत भी स्थान है, वहां-वहां ये मूल्य आज सुरक्षित से हैं। शिक्षा की अपनी संस्थाओं में आज ये बहुत ही असुरक्षित स्थिति से गुजर रहे हैं। शिक्षा अलग नहीं है समाज से। और वो अगर आज एक प्रकार का समर्पण कर रही है अन्याय के आगे, विषमता के आगे और भाईचारे की जगह विभाजन पैदा कर रही है। एक ऐसा समाज बना रही है, जहां पढ़ा-लिखा वर्ग इसलिए नहीं कि वह सुनना नहीं चाहता, बल्कि सुन पाएगा भी नहीं क्योंकि वो समझ नहीं पाएगा कि यह दूसरा जो वर्ग है क्या कह रहा है। क्योंकि उसकी भाषा ही वो नहीं होगी। बस ये बहुत से लोग जो आज हमें मिलते हैं, वैसे बहुत ज्यादा पढ़े लिखे हैं। बहुत अच्छी-अच्छी डिग्रियां लिए हुए हैं। वो आज 'मैला आंचल' नहीं पढ़ सकते। उनको आप 'संस्कृति के चार अध्याय' पढ़ने को कहेंगे तो कहेंगे कि यह तो बहुत हार्ड है। इसका अंग्रेजी अनुवाद नहीं है क्या। हालांकि वो हमारे ही बीच से निकले हुए बच्चे हैं। यह जो विभाजन है, यह केवल एक चिन्ह है।

भाषा का विभाजन इसको आप केवल निजीकरण या राज्य की कोताही से ना जोड़कर इतिहास को समझने की जिज्ञासा को विकसित करने के लिए प्रयोग करें। इसलिए नहीं कि हम इतिहास से लड़ें। इतिहास से लोग फालतू में लड़ते हैं। इमारतें तोड़ते हैं। कहते हैं कि चार-पांच सौ साल पुरानी भूल ठीक करेंगे। इतिहास से जब हम कुछ सीख पाते हैं तो इसलिए सीख पाते हैं कि अभी जो इतिहास जैसा बन रहा है, उसे वैसा ना बनने दें। हम उसको बनने से पहले ही थोड़ा सुधार लें। तो यह जो पूरा शिक्षा का प्रसंग है, इसमें शिक्षा का बोध शिक्षा को समझ कर हम आज कर सकते हैं कि शिक्षा अगर आज स्वयं सामाजिक विभाजन का माध्यम है तो वो अलग से नहीं है। वो एक विभाजित होते हुए समाज में अपनी भूमिका का निर्वाह कर रही है। अपनी स्थिति को बनाए रखने के लिए ऐसी हो गई है। उसकी आलोचना करने से कोई खास फायदा नहीं होगा। क्योंकि आलोचना करके तो हम फिर जज्बाती भूमि में पहुंच जाएंगे। जहां कहेंगे कि शिक्षा प्राचीन भारत में बहुत अच्छी थी। जब एक शिक्षक के पास चार-पांच छात्र होते थे। अब आज यह आ गया है कि हर एक बच्चे को पढ़ाना है। तो ऐसे समय में तो यह सब गड़बड़ होगी ही। तो वो सपना ही छोड़ दें लोकतंत्र का अगर हम प्राचीन परंपराओं से अपने आप को जोड़ना चाहें। वो जज्बाती भूमि हमें कुछ नहीं देगी। मुझे उम्मीद है कि प्रो. ग्रेवाल की स्मृति में ये जो अवसर आपने मुझे दिया शिक्षा में दिशा के निर्धारण के प्रश्न पर अपने विचार रखने का। यह व्यर्थ नहीं गया होगा।

संपर्क: 9466220145

डॉ. निधि अग्रवाल की कविताएं

*(गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश) में जन्म। बचपन से पढने और लिखने का शौक। **एम बी बी एस** के बाद **पैथोलॉजी में परास्नातक** की शिक्षा। वर्तमान में झांसी (उत्तर) में निजी रूप से कार्यरत। कविताएँ, कहनियाँ और सामाजिक विषयों पर ब्लॉग आदि का लेखन)*

गाँवन की भिनसार

नहीं लड़ती घड़ी की सुइयों से
गाँवन की भिनसार
चिरैया की चिचयान पर थिरकती
इत्मीनान के सूरज संग उगती हैं
गाँवन की भिनसार!

दबे पांव उतर नीम से
चली आती स्नेहिल किरण
चौंतरा पर दातुन ले बैठी
कक्को के पास ,
कर उनसे कुछ चुहल
ले आती एक स्मित
उनके पोपले चेहरे पर
और बरसाती है स्नेह अपार
अपनेपन के सूरज संग उगती हैं
गाँवन की भिनसार!

लांघ जाती हैं बखरी और दल्लान
पूछती हैं कुशल-क्षेम
चौका में औरों की ख्वाहिशों के
व्यंजनों में बघार लगाती
अपनी इच्छाओं को
सिल लुडिया मध्य दबा ,बाबा को
कलेऊ कराती गृहणी से
और तुरुप देती है उसकी
उधड़ी उम्मीद की
फरिया के कुछ किनारे
कर जाती है
नव ऊर्जा का संचार
आशा के सूरज संग उगती हैं
गाँवन की भिनसार!

बांट लेती हैं बोझ
नाजुक कंधों पर लदे बस्ते का
और थाम वक्त की उंगली
भर लेने देती हैं उन्हें कुछ
निश्चिंत से कुलांचे
बचाए रखती हैं उनकी नजर में
अल्हड़ बचपन का विश्वास
चाचा-भाई नहीं दिखते उन्हें
अपनी अस्मिता के भक्षक
नही बिखराती कलुषता के हथियार
संस्कारों के सूरज संग उगती हैं
गाँवन की भिनसार!

नन्ना के कांधे चढ़ आल्हा गुनगुनाती
पहुंच जाती हैं खेतों में
और पसर गेहूं की बालियन पर
बिखरा देती हैं सुनहरी आभा
करती शीतल पिता के हृदय के
चिंताओं के अंगार
दर्प के सूरज संग उगती हैं
गाँवन की भिनसार!

दोऊबिरियाँ में गोधूलि संग
करती हैं अठखेलियां
सिमट चौपालों की गप्पों में
घिस्सा का हिस्सा बन जाती
अहसासों के दीप जलाती
मन के अनचीन्हे कोनों को
चुपके से चिन्हित कर जाती
मुंदी आँखों में जगती रात भर
कभी न माने हार
जिजीविषा के सूरज संग उगती हैं
गाँवन की भिनसार!

(चिरैया: चिड़िया, चिचयान: कलरव, बघरी: आंगन, चौंतरा : चबूतरा, दल्लान: दालान , सिल लुडिया: सिल बट्टा, कलेऊ: सुबह का नाश्ता, फरिया: चुनरी , दोऊबिरियाँ : साँझ, घिस्सा: तम्बाकू घिसना, आल्हा: लोक गीत, कक्को: काकी)

सूखा

सूख गए सब नदियाँ-पोखर
नैना बरसे बन परनाले
इस बरस भी न बरसे बदरा
गगन में भी लग गए जाले!

मौड़ा-मौड़ी शांत भए सब
उलहाने न देती डुकरिया
पात नहीं अब हिलता कोई
डांग दिखात सूकी लकरिया!

काज नहीं कोई खेतों में
होत भुंसारे बटाठाई
गोड़न ताईं को देखे अब
सीने में भी पड़ी बिवाई!

घर-आंगन वीरान पड़े सब
ताला लटका है हर कुंडी
सड़कों से जोड़े सब नाता
तज दई गाँव की पगडंडी!

निष्ठुर आज बना है कितना
अजब खेल रच रहा विधाता
चौमासे में सूका पारें
भूखा अन्नदाता अभागा!

काहे आत्महत्या कहे जग
गले डला फांसी का फंदा
कंधा दे जमीन हड़प लई
मुआवजे का गोरखधंधा!

नेता और विधाता दोई
करबें गरीब का ही भक्षण
का सौनो खाबे की इच्छा?
खेतों का कर लो संरक्षण!

(पोखर: तालाब, मौड़ा : बच्चा, मौड़ी: बच्ची, डुकरिया: बूढ़ी,डांग-जंगल, सूकी: सूखी, करिया: लकड़ी, भुंसारे: सवेरे, कओ: करना, बटाठाई:बिना काम के, वारगी गोड़न: पैर, ताईं: तरफ, को: कौन, चौमासे: बारिश का मौसम, पारें : डाले, दई: देना, लई: लेना, दोई: दोनों, करबे: करना , सौनो:सोना, खाबे: खाना)

अमृतलाल मदान की कविता

ए हिन्द-पाक के लोगो

(पिछले पचासों सालों से साहित्य सृजन में सक्रिय वरिष्ठ साहित्यकार अमृतलाल मदान हरियाणा के कैथल शहर के निवासी हैं। नाटक, कविता, उपन्यास, यात्रा आदि लगभग हर विधा में साहित्य रचना कर रहे हैं। प्रगतिशील मूल्य व चेतना इनके साहित्य का केंद्रीय सूत्र है। सांप्रदायिक शक्तियों के खिलाफ निरंतर संघर्ष करते रहे हैं। - सं।)

ऐ हिन्द-पाक के लोगो
आसान बना लो राहें
सरहद पर आकर दोनों
फैला दो अपनी बाहें।

हम एक ही मां के बच्चे
फिर भी मजबूर हुए क्यों
जाने ये सियासत कैसी
मां-जाये दूर हुए क्यों?

है एक ही खूं की रंगत
है एक सी मीठी बोली
फिर भी ये कौन चलाता
पीठों के पीछे गोली?

कब तक बेवाएं भरेंगी
बहने माताएं भरेंगी
घायली ये हवाएं भरेंगी
ज़िंदा लाशों सी आहें।
ऐ हिन्द-पाक के लोगो...

दीवारें हों यूं नीची
बच्चे भी कूद के जाएं
गर पेड़ हों इक आंगन में
साये दूजे में छाएं।

बतला दें अब दुनिया को
नहीं फूल व खुशबू जुदा हैं
आवाम ही असली मालिक
सरकारें नहीं खुदा हैं।

किरचें व कंटीली तारें
फौजों की हटें ये कतारें
आओ इक साथ पुकारें
हम गले से लगना चाहें।
ए हिन्द-पाक के लोगो...

कई बीज इधर से जाकर
उस पार ज़मीं से फूटे
कई फूल उधर से आकर
इस पार फ़िज़ा में फूले।

हो एक सी आबो हवा जब
हो एक सा ताना बाना
मजहब की आड़ में फिर क्यों
मासूम लहू का बहाना।

हैं चांद और सूरज सांझे
झिलमिल तारे भी सांझे
है सांझा माज़ी अपना
सांझी आगे की राहें
ए हिन्द-पाक के लोगो...

1. आवाम-जनसाधारण 2. फ़िज़ा-वातावरण 3. आबो हवा-जलवायु 4. माज़ी-अतीत

संपर्क - 94662-39164

अशोक भाटिया

(लघुकथा के प्रमुख हस्ताक्षर वरिष्ठ साहित्यकार हिंदी कथा साहित्य के आलोचक हैं। तीन दशक से अधिक उच्च शिक्षा में साहित्य का अध्यापन किया। साहित्यिक गतिविधियों से समाज प्रगतिशील मूल्यों की स्थापना के लिए संघर्षरत हैं।)

धार्मिकता

जे धार्मिक होता है
वह झूठ नहीं बोलता
मैं नहीं चाहता
जो झूठ बोलता है
वह धार्मिक नहीं होता।

जो धार्मिक होता है
वह हिंसा नहीं करता
जो हिंसा करता है
वह धार्मिक नहीं होता।

जो धार्मिक होता है
वह मन में नफरत नहीं रखता
जो मन में नफरत रखता है
वह धार्मिक नहीं होता।

जो धार्मिक होता है
वह आदमी आदमी में फर्क नहीं करता
जो आदमी आदमी में फर्क करता है
वह धार्मिक नहीं होता।

संपर्क— 94161-52100

उदय ठाकुर

(उदय ठाकुर अंबाला में रहते हैं। लंबे समय से यथार्थपरक व जनपक्षधर साहित्य सृजन में सक्रिय हैं।)

नई कलम

पुरानी कलम को मैंने
हिफ़ाजत के तौर पर
धरोहर के रूप में
बक्से में बन्द कर दिया है
और दुकान से नई कलम ले आया हूं
नये युग की
तस्वीर खींचने के लिए।

संपर्क—8901488693

महेन्द्र प्रताप 'चांद'

(वरिष्ठ शायर महेंद्र प्रताप चांद अंबाला में रहते हैं। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र में लंबे समय तक पुस्तकालय अध्यक्ष रहे। पचासों साल से अपनी लेखनी से उर्दू ग़ज़ल को समृद्ध कर रहे है।)

ग़ज़ल

एक मधुर सपना था, आख़िर टूट गया
तेरा दामन हाथ में आकर छूट गया!

कितने मंज़र ओझल हुए निगाहों से
बेटी से जब बाबुल का घर छूट गया!

इक आवारा भंवरा आया मधुबन में
कोमल कलियों का जोबन रस लूट गया!

ठेस लगी तो चीख़ उठी रूहें-एहसास
ख़ार चुभे तो आबला दिल का फूट गया!

तन्ज़ के पत्थर जब अपनों ने बरसाए
दिल का नाज़ुक शीशा यकसर टूट गया!

तुम भी अपने मधुर वचन को भूल गए
एक भरम था मुझको, वो भी टूट गया!

अपनी अपनी ज़िद पर दोनों अड़े रहे
और युंही बरसों का रिश्ता टूट गया!

'चांद'! रफ़ीक-ए-राह बने कुछ लोग, मगर
ठक इक करके साथ सभी का छूट गया!

1. मंज़र - दृश्य, 2 रूहे-एहसास - चेतना की आत्मा 3 ख़ार—कांटे 4 आबला - छाला 5 तन्ज़—कटाक्ष 6 यकसर—पूर्ण रूप से 7 रफ़ीक-ए-राह - रास्ते के साथी

(हिन्दी में भ्रम होता है, लेकिन उर्दू में भरम, यहां वज़्न भी 'भरम' का है।)

संपर्क - 94161-55918, 98964-90966

कर्मजीत कौर किशांवल की कविताएं

□ पंजाबी से अनुवाद परमानंद शास्त्री

(कर्मजीत कौर किंशावल पंजाबी की कवयित्री हैं, गगन दमामे दी ताल कविता संग्रह प्रकाशित हुआ है। इनकी कविताएं दलित जीवन के यथार्थपरक चित्र उकेरती हुई सामाजिक न्याय के संघर्ष का पक्ष निर्माण कर रही हैं। पंजाबी से अनुवाद किया है परमानंद शास्त्री जी ने। उन्होंने पंजाबी से हिंदी में गुरदियाल सिंह के उपन्यास और गुरशरण सिंह के नाटकों का अनुवाद किया है। साहित्यिक-सांस्कृतिक क्षेत्र में अपनी सक्रियता से निरंतर सांस्कृतिक ऊर्जा निर्माण कर रहे हैं - सं.)

धर्म का राज

क्या करोगे पूछकर
कि
बनी हूँ मैं
शाम कौर से शकीना
या
शकीना से शाम कौर ?
क्या फर्क पड़ता है ?
बस नहीं भूलता मुझे
कि
'वह ' जिस दरिन्दे ने
मेरा नामकरण किया था
उसके एक हाथ में था
लहू से लथपथ खंजर
...और
... और दूसरे हाथ से
उसने मुझे
कतरनों की गुडिया की तरह
कंधे पर उठा लिया था।
मुझे नहीं मालूम
वह किस धर्म का
रहनुमा था
मुझे तो
उसकी आँखों में
भूखे भेडिये-सा
आतंक दिखा था बस।
नहीं समझ सकी मैं
कि
'क्या ' दुश्मनी थी
और 'क्यों 'दुश्मनी थी उसकी
मेरे मां-बाप से
भाइयों के धर्म से
(जिन्हें उसने एक ही साँस में काट फेंका
था)
...और मुझे
मुझे
संभाल लिया था
ज़रूरी सामान की तरह।
बनाकर मुझे
शकीना से शामकौर
या
शाम कौर से शकीना
कर लिया था उसने
अपने रब्ब की नजर में
कौनसा धर्म -कारज सम्पन्न ?

अदालत जारी है ...

घर से जो निकलता है
सवालों की गठरी
कंधे पर लादकर
लौट आता है वह रोज
सूनी आंखों में
अनसुलझे सवाल लेकर
घर से अदालत तक का रास्ता
बहुत छोटा लगता है अब उसे
बस
बड़े तो वे सवाल हो गए हैं
जिनके जवाब तलाशते
ज़िन्दगी का बड़ा हिस्सा
ये रास्ते लील गए हैं
वह अक्सर सोचता है ,
' क्या यह बीमार न्याय तंत्र
मेरे सवालों के जवाब दे सकेगा
मेरे ज़िंदा रहते ?
पर वे कहते हैं -
शोर मत करो
'अदालत जारी है '
बेशक
मर गए कई फरियादी
बिक गए तमाम गवाह
पर अदालत जारी है
यहां बोलने की मनाही है
ठंडी आहों की इजाजत है
सांस ले सकते हैं आप
पर उनमें बगावत न हो !
अदालत जारी है।

आज का कन्हैया

आज के कन्हैया के हाथ
मक्खन की मटकियों के लिए नहीं
हकों के लिए उठेंगे
आज वह नहीं फोड़ेगा
गोपियों की मटकियां
अब तो वह
चौराहे में फोड़ेगा
नकारा मान्यताओं की हांडी
बांसुरी की तान पर
नहीं रिझाना उसने
गोपियों का मन
अब तो उसने
खरे शब्दों के तर्क से
जगाना है आवाम को
अब वह ' रासलीला ' नहीं
' बोधलीला ' रचाएगा !

संपर्क - 9416921622

बस दो-चार बातें : एक मन्टो यह भी

□ मोहनरमणीक

(रमणीक मोहन जाट कालेज, रोहतक से अंग्रेजी साहित्य के एसोसिएट प्रोफेसर पद से सेवानिवृत हुए। साहित्यिक-सांस्कृतिक-शैक्षिक गतिविधियों से जुड़े हैं। सांझी संस्कृति, भाईचारा व अमन के लिए विभिन्न उपक्रमों के माध्यम से निरंतर सक्रिय हैं। हरकारा पत्रिका का वर्षों तक संपादन किया। 'सप्तरंग' नामक संस्था के माध्यम से प्रगतिशील मूल्यों को समाज में स्थापित करने के लिए संघर्षरत हैं - सं.)

अब तो मन्टो पर एक फ़िल्म भी बन चुकी है। न भी बनी होती तो हिन्दी-उर्दू साहित्य में दिलचस्पी रखने वाला शायद ही कोई व्यक्ति होगा जो सआदत हसन मन्टो के नाम से वाक़िफ़ न हो। मन्टो यानी वो, जो कहानीकार के रूप में आम तौर पर दो तरह की कहानियों के लिए मशहूर हुए – कहानियाँ जिन्हें फ़हश यानी अश्लील माना गया, और भारत-विभाजन की त्रासदी से जुड़ी रचनाएँ जिन में 'टोबा टेक सिंह', 'स्याह हाशिए' और 'खोल दो' ने सब से अधिक ख्याति पाई। मगर एक अदीब के तौर पर मन्टो के मूल्यांकन के लिए, समग्रता में उन्हें समझने के लिए, उन की शख़्सियत के कुछ विशेष पहलुओं और अन्य रचनाओं पर चर्चा भी ज़रूरी है।

कॉलेज में पहले साल की पढ़ाई के इम्तिहान में दो बार फ़ेल हुए, और स्कूल के आख़री साल में उर्दू के परचे में नाकाम रहे इस शख़्स का नाम अपनी अमिट छाप छोड़ने वाले बीसवीं सदी के नामी-गिरामी उर्दू लेखकों की सूची में आता है। मन्टो भरपूर और प्रचुर मात्रा में लिखने वाले साहित्यकार रहे। एक गणना के मुताबिक़ 1934 से जनवरी 1955 तक की अपनी साहित्यिक यात्रा में मन्टो ने 230 कहानियाँ लिखीं – 69 कहानियाँ 1934 से 1947, और 161, 1948 से 1955 तक। 100 से ज़्यादा रेडियो फ़ीचर और ड्रामे लिखे। साहित्य के मुद्दों पर, हमारे रोज़मर्रा जीवन पर, लेख भी लिखे। और इन के अलावा 'गंजे फ़रिशते' नाम के संकलन में 22 रेखा-चित्र, जो अपने ज़माने की मशहूर हस्तियों के बारे में हैं। कुछ फ़िल्मों के संवाद और स्क्रिप्ट भी लिखे।

मन्टो के व्यक्तित्व और कृतित्व में हमें एक ख़ास तरह का सामंजस्य महसूस होता है। उन के व्यक्तित्व का खुलापन, उन की दयानतदारी, सीधी बात करने का अन्दाज़ जिस के बारे में उन के जानकार हमें बताते हैं, हमें उन की रचनाओं में भी नज़र आता है। जिन दोस्तियों और घुमक्कड़ी का ज़िक्र रेखाचित्रों के संकलन 'गंजे फ़रिश्ते' में आता है, उन का अक्स हमें उन की कहानियों में भी एक अलग रंग में देखने को मिलता है। और सब से बढ़ कर, उन की कहानियों में हमें एक संवेदनशील मानव-प्रेमी दिखाई देता है।

मन्टो की रचनाओं में साहित्य और ज़िन्दगी एक दूसरे से अलग खड़े नहीं दिखाई देते – उन का साहित्य ज़िन्दगी का ही आईना दिखाई देता है। अपनी कहानियों के कई पात्र उन्होंने अपने आस-पास के माहौल से ही उठाए। हाँ, यह ज़रूर है कि लेखन की उन की शैली, बात कहने का उन का लहजा, चुस्त जुमलाबाज़ी, अल्फ़ाज़ के इस्तेमाल की रवानी, और हालात को ड्रामाई अन्दाज़ में पेश करने का हुनर ज़िन्दगी को साहित्य का वो रूप दे देता है कि हम सोच में पड़ जाते हैं - हम कहानी पढ़ रहे हैं या ज़िन्दगी की ही किसी घटना का जीता-जागता वृत्तांत?

मन्टो की कहानियों में विविधता है। ब्रिटिश हुकुमत के ख़िलाफ़ खड़े मुल्क की आब-ओ-हवा हमारे सामने रखती कहानियाँ हैं; समाज के हाशिए पर पड़े लोगों को हमारे लिए ज़िन्दा करती कहानियाँ भी हैं; ऐसे किरदारों के इर्द-गिर्द घूमती कहानियाँ हैं जो समाज की रवायतों और सीधे रास्तों से हट कर चलना पसन्द करते हैं, और वे कहानियाँ भी हैं जो देश के बंटवारे के हालात को हमारे सामने लाती हैं। यह सफ़र 1919 के जलियाँवाला बाग़ के हादिसे से प्रेरित पहली प्रकाशित कहानी 'तमाशा' से शुरू होता है। '1919 की एक बात' और 'स्वराज के लिए' भी इसी पृष्ठभूमि के अफ़साने हैं। इन तीनों को पढ़ लें तो उस दौर का अमृतसर और उस का माहौल हमारी आँखों के सामने ज़िन्दा आ खड़ा होता है। ग़ुलाम देश की ही कहानी 'नया क़ानून' है, जिस में मंगू कोचवान हमारे लिए उस दौर के आम आदमी का नुमाइंदा बन जाता है जो उम्मीद लगाए बैठा है कि 1935 का नया क़ानून उस के जीवन में एक बड़ा बदलाव लाएगा। मगर कहानी के आख़िर तक आते-आते पता चलता है कि क़ानून बदलने से ही ज़िन्दगी और हालात नहीं बदल जाते – ख़ास तौर पर तब जब वह क़ानून एक साम्राज्यवादी हुकूमत ने बनाया हो। इन कहानियों में हमें मन्टो की मौजूदगी का एहसास

रहता है – हालात को बयान करते और उन का जायज़ा लेते लेखक के तौर पर ही नहीं बल्कि इन हालात को किसी न किसी तरह असरअन्दाज़ करने की ललक वाले इन्सान के रूप में भी। मुल्क में जो कुछ हो रहा था, उस के प्रति उन की दिलचस्पी इन कहानियों में ज़ाहिर है।

मन्टो की कहानियों में हमें टेढ़े किरदार बार-बार देखने को मिलते हैं, जो बने-बनाए सांचों में ढलने को तैयार नहीं, जो एक अलग ही रास्ते पर चलने पर आमादा हैं। जैसे, 'टेढ़ी लकीर' और 'बादशाहत का ख़ात्मा' कहानियों के मुख्य किरदार या फिर कहानी 'लाइसेन्स' की नीति, जो पति की मौत के बाद तांगा चला कर अपना पेट पालती है। बेबसी में घिरे, मौजूदा सामाजिक व्यवस्था और उस के घटिया प्रतिनिधियों के ख़िलाफ़ जैसे-तैसे विरोध का स्वर उठाने को लालायित किरदार भी हैं – जैसे कहानी 'शग़ल' का, बारह घण्टे मज़दूरी करने वाला फ़ज़ल, जो अमीरों की अय्याशी के ख़िलाफ़ यह कहने की हिम्मत करता है कि "अगर अमीर आदमियों के यही शग़ल हैं तो हम ग़रीबों की बहु-बेटियों का अल्लाह बेली है"। या फिर कहानी 'नारा' में मूंगफली बेचने वाला केशोलाल जिस ने "अन्दर ही अन्दर अपने हर ज़र्रे को एक बम बना लिया था" क्योंकि वह दो महीनों का खोली का किराया न दे पाने की वजह से मालिक की मोटी गालियाँ सहने को मजबूर है। और नीति तो औरत को तांगा न चलाने देने के ख़िलाफ़ पुरज़ोर आवाज़ उठाती है – "हुज़ूर, आप मेरा तांगा-घोड़ा ज़ब्त कर लें, पर मुझे यह तो बताएँ कि औरत तांगा क्यों नहीं चला सकती...। औरतें चर्खा चला कर अपना पेट पाल सकती हैं; ...। टोकरी ढो कर रोज़ी कमा सकती हैं; ... कोयले चुन-चुन कर अपनी रोटी पैदा कर सकती हैं...। मैं तांगा चला कर क्यों अपना पेट नहीं भर सकती?...। आप मुझे मेहनत-मज़दूरी से क्यों रोकते हैं?" मन्टो की कई महिला किरदारों की तरह नीति भी हालात का शिकार है मगर 'काली शलवार' की सुलताना और 'हतक' की सौगन्धी की तरह विचारशील है, मोज़ेल की तरह हालात से जूझने को तैयार है।

मन्टो के पाकिस्तान जा बसने के बाद की रचनाओं में नए हालात के साथ चलते, उन पर टिप्पणी करते मन्टो हमें दिखाई देते हैं। इन रचनाओं को पढ़ कर नव-निर्मित मुल्क की उस दौर की एक तस्वीर हमारे ज़ेहन में उभरती है। इसी दौर की रचनाओं में कुछ ऐसी भी हैं जिन में उस वक़्त के भारत-पाकिस्तान सम्बन्धों का साया पड़ता महसूस होता है।

लकिन इन पर स्वतंत्र तौर से बात करने की ज़रूरत है।

संपर्क - 9729471398

लघु कथा

चौराहे का दीया

□ **कमलेश भारतीय**

(वरिष्ठ साहित्यकार कमलेश भारतीय दैनिक ट्रिब्यून से जुड़े रहे हैं। हरियाणा ग्रंथ अकादमी की पत्रिका कथा समय का संपादन किया। वर्तमान में नभछोर के साहितियक पृष्ठ का संपादन कर रहे हैं। साहित्यिक गतविधियों में निरंतर सक्रिय हैं।)

दंगों से भरा अखबार मेरे हाथ में है पर नजरें खबरों से कहीं दूर अतीत में खोई हुई हैं।

इधर मुंह से लार टपकती उधर दादी मां के आदेश जान खाए रहते। दीवाली के दिन सुबह से घर में लाए गये मिठाई के डिब्बे और फलों के टोकरे मानों हमें चिढ़ा रहे होते। शाम तक उनकी महक हमें तड़पा डालतीं । पर दादी मां हमारा उत्साह सोख डालतीं, यह कहते हुए कि पूजा से पहले कुछ नहीं मिलेगा। चाहे रोओ, चाहे हंसो।

हम जीभ पर ताले लगाए पूजा का इंतजार करते पर पूजा खत्म होते ही दादी मां एक थाली में मिट्टी के कई दीयों में सरसों का तेल डालकर जब हमें समझाने लगती - यह दीया मंदिर में जलाना है , यह दीया गुरुद्वारे में और एक दीया चौराहे पर ,,,,,

और हम ऊब जाते। ठीक है, ठीक है कहकर जाने की जल्दबाजी मचाने लगते। हमें लौट कर आने वाले फल, मिठाइयां लुभा ललचा रहे होते । तिस पर दादी मां की व्याख्याएं खत्म होने का नाम न लेतीं। वे किसी जिद्दी, प्रश्न सनकी अध्यापिका की तरह हमसे प्रश्न पर प्रश्न करतीं कहने लगतीं - सिर्फ दीये जलाने से क्या होगा ? समझ में भी आया कुछ ?

हम नालायक बच्चों की तरह हार मान लेते। और आग्रह करते - दादी मां। आप ही बताइए।

- ये दीये इसलिए जलाए जाते हैं ताकि मंदिर, मस्जिद और गुरुद्वारे से एक सी रोशनी , एक सा ज्ञान हासिल कर सको । सभी धर्मों में विश्वास रखो।

- और चौराहे का दीया किसलिए , दादी मां ?

हम खीज कर पूछ लेते । उस दीये को जलाना हमें बेकार का सिरदर्द लगता । जरा सी हवा के झोंके से ही तो बुझ जाएगा । कोई ठोकर मार कर तोड़ डालेगा।

दादी मां जरा विचलित न होतीं । मुस्कुराती हुई समझाती

- मेरे प्यारे बच्चो। चौराहे का दीया सबसे ज्यादा जरूरी है। इससे भटकने वाले मुसाफिरों को मंजिल मिल सकती है। मंदिर गुरुद्वारे को जोड़ने वाली एक ही ज्योति की पहचान भी।

तब हमे बच्चे थे और उन अर्थों को ग्रहण करने में असमर्थ। मगर आज हमें उसी चौराहे के दीये की खोजकर रहे हैं , जो हमें इस घोर अंधकार में भी रास्ता दिखा दे।

संपर्क - 9416047075

उर्दू शायरी की विधाएं

□ शशिकांत श्रीवास्तव

(अंग्रेजी के विद्वान शशिकांत श्रीवास्तव साहित्य के गंभीर अध्येता हैं। कई दशकों तक कालेज में अध्यापन किया और हरियाणा के सरकारी कालेजों में प्रिंसीपल रहे। हिंदुस्तानी साहित्य की सांझी विरासत को आत्मसात किया है। उर्दू ग़ज़ल के गहरे जानकार हैं देस हरियाणा के आगामी अंकों में आप पढ़ेंगे शशिकांत श्रीवास्तव लिखित उर्दू ग़ज़ल के सफर को। प्रस्तुत है उर्दू की विभिन्न विधाओं के बारे में उनके विचार - सं।)

जब कभी भी, कहीं भी उर्दू 'शायरी' की बात होती है, तो आमतौर पर इसका मतलब 'ग़ज़ल' ही लिया जाता है और ऐसा स्वाभाविक ही है क्योंकि 'ग़ज़ल' ही उर्दू शायरी की सबसे ज्यादा प्रचलित और लोकप्रिय विधा है। पिछले 6 -7 दशकों से अपनी मधुर आवाज और गायकी से सहगल, बेग़म अख्तर, शांति हीरानन्द, तलत महमूद, गुलामअली, मल्लिका पुखराज, मेहदी हसन, जगजीत सिंह आदि ने उर्दू 'ग़ज़ल' को जन-जन तक पहुंचा दिया, यहां तक कि 'शायरी' और 'ग़ज़ल' पर्यायवाची शब्द बन गए हैं, परन्तु उर्दू शायरी में अन्य विधाएं भी हैं, जो अपने-आप में महत्वपूर्ण हैं। इनमें से सबसे अधिक प्रचलित विधा है - 'नज़्म'।

ग़ज़ल

उर्दू शायरी को समझने तथा उसका भरपूर आनंद लेने के लिए आवश्यक है कि हम इसकी दो विधाओं 'ग़ज़ल' और 'नज़्म' को समझ लें। ग़ज़ल का एक निश्चित प्रारूप होता है, इसमें 2-2 लाईनों के कुछ शेर होते हैं। (आम तौर पर एक ग़ज़ल में 5 से 13 के बीच शेर होते हैं) पहले शेर को 'मतला' कहते हैं। इसकी दोनों लाईनों के आखिरी शब्द एक जैसे होते हैं, इन्हें 'काफ़िया' - 'रदीफ़' कहा जाता है। उदाहरण के लिए 'मीर' और 'ग़ालिब' की दो ग़ज़लों से 'मतला' पेश है।

इधर से अब्र उठकर जो गया है
हमारे हाल पर वो रो गया है - 'मीर'
(अब्र : बादल)

इसमें 'जो गया', 'रो गया' काफ़िया है और 'है' रदीफ़ है।
एक और मतला देखिए :

दिले नादां मुझे हुआ क्या है
आखिर इस दर्द की दवा क्या है- 'गालिब'

यहां भी अंतिम शब्द- 'है' रदीफ़ है और इससे पहले के दो शब्द 'हुआ क्या' काफ़िया है।

ग़ज़ल के अन्य शेरों में पहली लाईन का अंतिम शब्द कुछ भी हो सकता है, परन्तु दूसरी लाईन के अंतिम शब्द को काफ़िया - रदीफ़ निभाना होता है।

ग़ज़ल के आखिरी शेर को 'मक़ता' कहते हैं। शायर आमतौर पर इसमें अपना नाम या उपनाम 'तख़ल्लुस' डाल देते हैं। मीर और ग़ालिब का इन्हीं ग़ज़लों के 'मक़ता' देखिए :

सिरहाने 'मीर' के आहिस्ता बोलो,
अभी टुक रोते-रोते सो गया है,
या
मैंने माना कि कुछ नहीं 'ग़ालिब'
मुफ्त हाथ आए तो बुरा क्या है।

इन ग़ज़लों पर नज़र डालने से 'मतला', 'मक़ता' और ग़ज़ल का प्रारूप स्पष्ट हो जाता है और साथ ही एक बात भी उभर कर आती है जो ग़ज़ल की बहुत बड़ी विशेषता है- ग़ज़ल का हर शेर अपने-आप में पूर्ण होता है और उसका अपना अर्थ होता है। ग़ज़ल के विभिन्न शेर 'काफ़िया-रदीफ़' से तो जरूर जुड़े होते हैं, परन्तु विषय में जुड़े हुए नहीं होते। हर शेर एक-दूसरे से स्वतंत्र होता है और उसे अलग से समझा जा सकता है।

ग़ज़ल की विषय वस्तु :

'ग़ज़ल' का शाब्दिक अर्थ होता है - महबूब से मुख़ातिब होना, इसलिए स्वाभाविक है कि 'ग़ज़ल' आम तौर पर हुस्न और इश्क पर या इनसे जुड़े हुए दूसरे पहलुओं पर लिखी जाती रही है। ग़ज़ल में 'हिज्र', 'विसाल', 'वफ़ा', 'जफ़ा' 'मय',

'मैक़दा', 'वाईज़', 'नासेह', 'रक़ीब', 'पैगाम', 'करम', 'सितम' आदि शब्दों की भरमार होती है। शायर अतिश्योक्ति का बहुत इस्तेमाल करते हैं। 'क़ासिद' का पैगाम लेकर आना, न आना इनके लिए ज़िंदगी और मौत की तरह है। इन सबके साथ, उर्दू ग़ज़ल में शायरों की बेमिसाल उपमाएं कल्पना की उड़ान, शब्दों का चयन और उनकी तरतीब- ग़ज़ल को बहुत ऊंचाइयों तक ले जाती है। उर्दू की अनेक ग़ज़लों में शायरों ने अपनी नाजुक ख्याली, शब्दों के खूबसूरत इस्तेमाल और उपमाओं से साहित्य की उच्चतम चोटियों को छुआ है और इन ग़ज़लों को कालजयी बना दिया है।

परन्तु अब वक्त इतनी तेजी से बदल रहा है, ज़िंदगी इतनी मशीनी और भाग-दौड़ वाली हो गई है कि अब किसी को फुरसत ही नहीं रही है कि वह 'ग़ज़ल' - जैसी खूबसूरत चीज़ का आनंद ले सके, सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक, राजनैतिक परिवर्तन हो रहे हैं। बदलते हुए ढांचे से शायर भी अछूते नहीं रह पा रहे हैं और अब ग़ज़लों में हुस्न और इश्क़ की जगह, माहौल के असंतोष और आक्रोश ने ले ली है। बानगी के तौर पर दुष्यंत कुमार की एक ग़ज़ल देखिए :

हो गई है पीर पर्वत-सी, पिघलनी चाहिए,
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।
आज यह दीवार परदों की तरह हिलने लगी,
शर्त लेकिन थी कि, ये बुनियाद हिलनी चाहिए।
सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं,
सारी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।
मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही,
हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए।

हम देख सकते हें कि इस ग़ज़ल का प्रारूप 'मतला', 'काफ़िया' - रदीफ़ तो पारम्परिक है, परन्तु विषयवस्तु और शब्दावली बिल्कुल हट कर है। अब ग़ज़ल के शेर अलग-अलग अर्थ वाले होकर भी एक ही विषय-वस्तु से जुड़े रह सकते हैं।

नज़्म

उर्दू शायरी में 'नज़्म' एक बहुत प्रचलित व प्रभावी विधा है, जो महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यह एक 'स्वछन्द' काव्य-विधा है। इसमें ग़ज़ल की तरह प्रारूप का कोई बंधन नहीं होता - ना ही 'मतला' या 'मक़ता' और ना ही 'काफ़िया', 'रदीफ़' का बंधन होता है।

नज़्म की सबसे बड़ी विशेषता जो उसकी विशिष्ट पहचान भी है, वह है उसकी 'विषय वस्तु'। नज़्म में शुरू से आखिर तक एक ही विषय, एक ही विचार होता है। पूरी नज़्म एक खूबसूरत लड़ी की तरह होती है, जिसमें एक ही विचार पिरोया जाता है, इसलिए किन्हीं दो या चार लाईनों का अलग से कोई स्पष्ट अर्थ नहीं हो सकता। इस तरह 'नज़्म', 'ग़ज़ल' से बहुत अलग होती है। ग़ज़ल के हर शेर का अपना अर्थ होता है जबकि 'नज़्म' अपनी सम्पूर्णता में ही समझी जा सकती है। 'ग़ज़ल' में बड़ी से बड़ी बात, किसी भी विचार को शेर की दो लाईनों में बांध दिया जाता है। इसके विपरीत, 'नज़्म' में छोटी से छोटी बात को भी विस्तार दे दिया जाता है। नज़्म का विषय कुछ भी हो सकता है। आसपास होने वाली किसी भी घटना को - जिसे शायर बहुत शिद्दत से महसूस करता है वह अपने ज़ज़्बात को 'नज़्म' में बांध देता है, इसलिए 'नज़्म' का क्षेत्र बहुत विस्तृत है- राजनैतिक, सामाजिक, साम्प्रदायिकता, रूढियां, भ्रूण हत्या, कोई भी कुरीति या नितांत व्यक्तिगत - नज़्म का उपयुक्त विषय हो सकता है, बहुत गहरे में, नज़्म इन पर चोट करती है और पाठकों का ध्यान इन बुराइयों की ओर खींच कर उन्हें दूर करने की कोशिश करती है।

इस प्रकार नज़्म विषय के चुनाव में और प्रारूप में तो स्वतंत्र है ही, इसके अलावा 'नज़्म' कितनी लंबी हो, इसका भी कोई बंधन नहीं है। बहुत छोटी भी हो सकती है और लंबी भी।

आजकल की मशीनी और भागदौड़ की ज़िंदगी में 'ग़ज़ल' लिखना, पढ़ना अपेक्षाकृत कम होता जा रहा है। आज का माहौल नज़्म के लिए अधिक उपयुक्त है। बहुत ही उत्कृष्ट नज़्में कही लिखी जा रही हैं। हालांकि, 'ग़ज़ल' भी चल रही है और ख़ूब चल रही है।

यहां उदाहरण के तौर पर दो नज़्में दी जा रही हैं। एक नज़्म फैज़ अहमद फैज़ की है और दूसरी कैफी आज़मी की।

'फैज़' साहब ने इस बेमिसाल नज़्म में एक अत्यंत गंभीर मसला उठाया है - इन्सान की वास्तविकता क्या है। यदि उसे इसका इल्म हो जाए तो वह मानों सब कुछ पा जाता है।

मेरा दर्द नग़्मा-ए-बेसदा
मेरी ज़ात जर्रा-ए-बेनिशां
मेरे दर्द को जो जुबां मिले
मुझे अपना नाम-ओ-निशां मिले,
मेरी ज़ात का जो निशां मिले
मुझे राज़े-ए-नज़्मे - जहां मिले
मेरी ख़ामोशी को जुबां मिले
मुझे क़ायनात की सरवरी
मुझे दौलत-ए-दो जहां मिले

सांप - कैफी आज़मी

ये सांप आज जो फन उठाए
मेरे रास्ते में खड़ा है
क़दम चांद पर मैंने जिस दिन रखा
उसी दिन इसे मार डाला था मैंने
उखाड़े थे, सब दांत, कुचला था सर भी
मरोड़ी थी दुम, तोड़ दी थी कमर भी
मगर चांद से झुक के देखा जो मैंने
तो दुम इसकी हिलने लगी थी
ये कुछ रेंगने भी लगा था
ये कुछ रेंगता, कुछ घिसटता हुआ
पुराने शिवाले की जानिब चला,
जहां इसको दूध पिलाया गया।
पढ़े पंडितों ने कई मंत्र ऐसे
ये कमबख़्त फिर से जिलाया गया।
शिवाले से निकला ये फुनकारता
रगे-अजऱ् पर डंक सा मारता
बढ़ा मैं कि एक बार फिर सर कुचल दूं
इसे भारी क़दमों से अपने मसल दूं।
करीब एक वीरान मस्जिद थी
मस्जिद में ये जा छुपा
जहां इसको पिटराल से गुस्ल देकर
हसीन एक तावीज़ गर्दन में डाला गया
हुआ जितना सदियों में से इन्सां बुलंद
ये कुछ उससे ऊंचा उछाला गया।
ये हिन्दू नहीं है, मुसलमां नहीं
ये दोनों का मग्ज़ और खूं चाटता है
बने जब ये हिन्दू, मुसलमान इन्सान
उसी दिन ये कमबख़्त मर जाएगा।

कैफ़ी आज़मी की सांप को प्रतीक बनाकर साम्प्रदायिक दंगों को भड़काने वाले धर्म के ठेकेदारों पर तीखा कटाक्ष किया है। हम सभी हिन्दू-मुसलमान बनने के बजाए सच्चे इंसान बन जाएं, तभी और सिर्फ तभी इस साम्प्रदायिक 'सांप' को कुचल सकते हैं। कैफ़ी आज़मी की यह नज़्म मौजूदा दंगे-फसाद (धर्म-मंदिर-मस्जिद के नाम) पर करारी चोट है। इसी तरह और नज़्म-गो भी समाज में फैली कुरीतियों पर चोट करती हुई बेहतरीन नज़्में लिख रहे हैं।

रुबाई

उर्दू शायरी में रुबाई अपना एक विशेष स्थान रखती है। यह चार लाईनों की एक स्वतंत्र रचना है, जिसका अपना पूर्ण अर्थ होता है। इन चार लाईनों की रचना 'अ, अ, ब, अ' तरतीब से होती है। विषय कुछ भी हो सकता है-पारंपरिक ग़ज़ल वाला विषय (हुस्नो-इश्क) या किसी गंभीर मसले को छूता हुआ - कुछ भी। लगभग सभी शायरों ने ग़ज़ल और नज़्म के साथ-साथ कुछ रुबाईयां भी लिखी हैं। 'जोश', 'जिगर', 'साहिर', 'फ़ैज़', 'शाद', 'अमजद', 'फ़रहत' आदि शायरों ने तो बहुत ऊंचे पाए की रुबाईयां कही हैं : चन्द रुबाईयों पर नज़र डालते हैं :

मज़हब से, न ईमान से खतरा है बहुत, (अ)
दुनिया में न शैतान से ख़तरा है बहुत, (अ)
सच पूछे जो कोई मुझसे 'फ़रहत साहेब' (ब)
इन्सान को इन्सान से ख़तरा है बहुत (अ)

-'फ़रहत' कानपुरी

जितने सितम किए थे किसी ने अताब में,
वो भी मिला लिए करम-ए-बेहिसाब में
हर चीज़ पर बहार, हर इक शै पे हुस्न था,
दुनिया, जवान थी, मेरे अहदे-शबाब में

-'सीमाब' अकबराबादी

(अताब=क्रोध , करम-ए-बेहिसाब में - अनगिनत मेहरबानियां, अहदे-शबाब - जवानी का समय)

ग़ज़ल, 'नज़्म', 'रुबाई' के अलावा उर्दू शायरी की और भी कई विधाएं हैं जैसे 'मसनवी' - पद्य में कोई कहानी, आमतौर पर प्रेम-कहानी। 'मर्सिया' (शोक-गीत) 'क़सीदा' (किसी की प्रशंसा) आदि उर्दू में चार लाईनों की और रचना ('रुबाई' के अतिरिक्त) भी होती है। जाते-जाते एक नज़र 'फ़ैज' की इन निहायत खूबसूरत चार लाईनों पर डाल लें, जिन्हें सिर्फ महसूस किया जा सकता है :

रात यूं दिल में तेरी खोई हुई याद आई,
जैसे वीराने में चुपके से बहार आ जाए,
जैसे सहराओं में हौली से चले बादे नसीम
जैसे बीमार को बेवजह क़रार आ जाए,

शायरी के ऐसे ही हीरे उर्दू शायरी को सदा बहार बनाए रखते हैं।

संपर्क - 9896587345

लेखकीय सरोकार की अनूठी यात्राएं

(बाबा भलखू हिमाचल के विश्वविख्यात पर्यटन स्थल चायल स्थित झाझा गांव के अनपढ़ मजदूर थे जिन्होंने अंग्रेजी राज में शिमला कालका रेल का सर्वे किया था और इस रेल मार्ग की सबसे बड़ी बड़ोग सुरंग का निर्माण करवाया था। उनकी सूझबूझ से ही अंग्रेज हिन्दुस्तान तिब्बत रोड़ के निर्माण के वक्त सतलुज नदी पर कई पुल लगा पाए थे। ब्रिटिश प्रशासन ने इस अनपढ़ मजदूर को ओवरशीयर की उपाधि दी थी और अनपढ़ इंजीनीयर से नवाजा था। उनकी स्मृति में रेलवे विभाग ने शिमला बस स्टेशन पर एक खूबसूरत संग्रहालय भी बनाया है।

हिमालय साहित्य संस्कृति व पर्यावरण मंच तथा नवल प्रयास के संयुक्त संयोजन में अनपढ़ इंजिनीयर बाबा भलखू स्मृति के बहाने सफल साहित्यिक रेल और ग्रामीण आयोजन उन्हीं की स्मृति को समर्पित थीं। - सं.)

एस आर हरनोट हिमाचल में ही नहीं, देश और विदेशों तक साहित्य में चर्चित नाम है लेकिन अपनी संस्था हिमालय साहित्य संस्कृति मंच के बैनरों में बिना सरकारी सहायता के अपने साधनों और लेखकों के सहयोग से विविध साहित्यिक आयोजनों के लिए भी जाने जाते हैं। वे आए दिनों कोई न कोई नया काम हिमाचल के ही नहीं बल्कि देशभर से शिमला आने वाले लेखकों के साथ मिलकर करते रहते हैं। उन्होंने हमेशा अति वरिष्ठ और युवा तथा नवोदित साहित्यकारों को मंच ही नहीं प्रदान किया बल्कि उन्हें सम्मानित भी करते रहे हैं। शिमला बुक केफे जब मार्च, 2017 में शिमला नगर निगम ने शिमला रिज पर स्थित टका बैंच पर खोला तो हरनोट ने अपने दो लेखक साथियों कुल राजीव पंत और आत्मा रंजन के साथ वहां साहित्यिक बैठकों के आयोजन की रूप रेखा बनाई और तीनों लेखकों के मिले जुले प्रयास ने इस तरह गति पकड़ी कि अब इन गोष्ठियों की चर्चा हिमाचल में ही नहीं बल्कि पूरे देश में हो रही है। बुक केफे का संचालन कंडा और कैथू जेल के इनमेटस करते हैं जो अपने आप में एक मिसाल है। जेलों को सुधार गृहों में बदलने की परिकल्पना हिमाचल प्रदेश के पुलिस महा निदेशक (जेल) श्री सोमेश गोयल जी की है जो स्वयं साहित्य प्रेमी हैं और लेखकों के साथ कई आयोजनों में सक्रिय रूप से भाग भी लेते हैं।

इस बार हरनोट ने शिमला की प्रतिष्ठित संस्था नवल प्रयास, जिसका संचालन डा. विनोद प्रकाश गुप्ता जी करते हैं के साथ मिल कर दो बड़े आयोजन किए जो बरसों-बरस याद किए जाएंगे। गुप्ता जी आईएएस अधिकारी रहे हैं जो हिमाचल प्रदेश सरकार से प्रधान सचिव के पद से सेवानिवृत हैं और अब साहित्य सृजन और नवल प्रयास के बैनर में प्रदेश में ही नहीं देश भर में साहित्यिक आयोजन कर रहे हैं। हिमालय मंच ने नवल प्रयास के साथ पहले कार्यक्रम की शुरूआत जेल के पुलिस महानिदेशक सोमेश गोयल के साथ कंडा जेल में नेलसन मंडेला दिवस पर साहित्यिक गोष्ठी के आयोजन से की जो अति सफल रही। इस में लगभग पांच सौ कैदियों ने भाग लिया और शिमला से 15 लेखक शामिल हुए। कैदियों ने भी कविता पाठ किए।

हरनोट के एक अनूठे कन्सैप्ट के तहत शिमला-कालका विश्व धरोहर रेलवे में इस रेल के सर्वेक्षक अनपढ़ इंजीनियर बाबा भलखू की स्मृति में 19 अगस्त को 30 लेखकों के साथ आयोजित साहित्य यात्रा अभूतपूर्व थी। यात्रा 19 अगस्त, 2018 को शिमला रेलवे स्टेशन से 10.25 पर प्रारम्भ हुई। इसलिए यात्रा के सत्रों में संस्मरण, लघु कथाएं, व्यंग्य, कहानी और कविता के सत्र यथावत आयोजित हुए। 30 लेखक जब बड़ोग स्टेशन पर पहुंचे तो यह देखकर अचम्भित थे कि वहां असंख्य लोग हाथ में फूल मालाएं लेकर लेखकों का स्वागत कर रहे थे। यह दृश्य सचमुच भावविभार कर देने वाला था। उनके स्वागत में स्वयं कैथलीघाट और बड़ोग के रेलवे अधिकारी तो थे ही बल्कि सोलन से लेखक, पत्रकार, रंगकर्मी और बहुत से प्रतिष्ठित लोग शामिल थे। कैथलीघाट रेलवे स्टेशन के स्टेशन मास्टर संजय गेरा तो पूरी यात्रा में साथ रहे। जेल ट्रैक की सम्पूर्ण जानकारी सुमित राज देते रहे। लेखकों ने बड़ोग में रेलवे कंटीन में दोपहर का भोजन लेकर फिर शिमला के लिए कालका-शिमला रेल में यात्रा शुरू की और पुनः कहानियों, कविताओं, संस्मरणों और ग़ज़लों का दौर चला। आखिरी सत्र महिला लेखिकाओं के लिए विशेषतौर पर उनके रचनापाठ के लिए समर्पित किया गया।

इस यात्रा में जो लेखक शामिल रहे वे हैंः एस आर हरनोट, विनोद प्रकाश गुप्ता, डॉ. हेमराज कौशिक, डा. मीनाक्षी एफ पाल, आत्मा रंजन, सुदर्शन वशिष्ठ, डा. विद्या निधि, कुल राजीव पंत, गुप्तेश्वर नाथ उपाध्याय, राकेश कुमार सिंह, सतीश रत्न,

सीता राम शर्मा, दिनेश शर्मा, डॉ. अनुराग विजयवर्गीय, शांति स्वरूप शर्मा, कौशल मुंगटा, अंजलि दीवान, उमा ठाकुर, प्रियंवदा, वंदना भागड़ा, रितांजलि हस्तीर, अश्विनली कुमार, कल्पना गांगटा, वंदना राणा, सुमित राज, निर्मला चंदेल, पौमिला ठाकुर, संजय गेरा।

इस यात्रा का दूसरा चरण लेखकों ने 2 सितम्बर, 2018 को बाबा भलखू के पैतृक गांव झाझा में पूर्ण किया जिसमें 21 लेखक और बहुत से ग्रामीण शामिल हुए। यात्रा का पहला पड़ाव ऐतिहासिक जुनगा गांव था जो क्योंथल रियासत की राजधानी भी रही है। यहां ग्राम पंचायत जुनगा की प्रधान श्रीमती अंजना सेन ने लेखकों के स्वागत और साहित्य सृजन संवाद का पंचायत घर में आयोजन किया जिसमें तकरीबन 90 महिलाएं और पुरूष शामिल हुए। यह पंचायत और महिला मंडल ने संयुक्त रूप से आयोजित किया। उनके सहयोगी रहे बीडीसी की सदस्या सीमा सेन, उप प्रधान मदन लाल शर्मा, हिमाचल पर्यटन निगम के पूर्व सहायक महा प्रबन्धक देवेन्द्र सेन, महिला मंडल की प्रधान आशा कौंडल और अन्य पंचायत के सदस्य। लेखकों ने पंचायत प्रधान और उपस्थित आमजनों से किसान जीवन को लेकर भी संवाद किया। उन्होंने बहुत सी योजनाओं का ब्यौरा लेखकों से सांझा किया। लेखकों ने भी कृषि, पशु पालन और अन्य जन साधारण की सुविधाओं के संदर्भ में लोगों से विस्तृत चर्चा की।

कवि गोष्ठी और लोक संगीत का मिलाजुला कार्यक्रम तकरीबन दो घण्टों तक चला। जुनगा पुलिस प्रशिक्षण केंद्र के पुलिसकर्मी और स्थानीय निवासी संतोष डोगरा और आशा कौंडल ने लोकगीतों से समा बांध दिया। पंचायत प्रधान अंजना सेन ने लेखकों का स्वागत और आभार प्रकट करते हुए इस अनूठी गोष्ठी और यात्रा की सराहना की। देवेन्द्र सेन ने भी लेखकों के सम्मान में संबोधन किया। नवल प्रयास के अध्यक्ष विनोद प्रकाश गुप्ता ने जुनगा से रहे अपने सम्बन्धों के बारे में जिक्र करते हुए पंचायत का इस आयोजन के लिए आभार प्रकट किया।

हिमाचल मंच के अध्यक्ष एस आर हरनोट ने कहा कि इसके बाद लेखक इस तहर की साहित्यिक यात्राएं जारी रखेंगे जो दूर दराज के गांव के लिए वहां के स्थानीय लोगों से सीधा संवाद स्थापित करने की दृष्टि से लेखकों की आपसी सहभागिता से ही होगी। इसके बाद जुनगा के राजा विक्रम सेन ने लेखकों का अपने कलात्मक महल जुनगा में स्वागत किया और लम्बी बातचीत हुई। राजा जुनगा की पुश्तैनी लाईब्रेरी पुरानी और नयी पुस्तकों से सम्पन्न है जिसमें कई हजार हस्तलिखित पांडुलिपियां टांकरी और अन्य भाषाओं की मौजूद हैं जहां तक कोई सरकारी विभाग अभी तक नहीं पहुंच पाया। महल में कई कलात्मक और पुरातात्विक वस्तुओं का बड़ा संग्रह है। इतिहास के शोध छात्र यहां अध्ययन के लिए आते रहते हैं।

इस यात्रा का दूसरा पड़ाव चायल स्थित झाझा गांव था। लेखकों के इंतजार में शिमला आकाशवाणी से सेवानिवृत वरिष्ठ लेखक व रंगकर्मी बी.आर.मेहता जी और चायल एकांत रीट्रीट के मालिक व स्थानीय निवासी देवेन्द्र वर्मा व अन्य ग्रामीण पहले से ही मौजूद थे। लेखकों ने बाबा भलखू के पुश्तैनी घर का भ्रमण किया और काफी समय उनके परिजनों के साथ व्यतीत किया। झाझा में एक मात्र भलखू का ही घर है जो अपनी प्राचीनता को बरकरार रखे हुए है। धज्जी दीवाल और पत्थर की छत और बरामदे वाले इस दो मंजिला भवन का पुरातन सौन्दर्य देखते ही बनता है। इसकी धरातल मंजिल में गौशाला और भंडार है जबकि दूसरी मंजिल, जहां भलखू खुद रहते थे, अपने रहन सहन के लिए हैं।

साहित्य गोष्ठी का आयोजन युवा कृषक सुशील ठाकुर ने अपने निवास पर किया। उनका सहयोग उनकी धर्मपत्नी रमा ठाकुर ने दिया जो हिमाचल न्यूज का संचालन करती है। लेखकों के स्वागत में सुशील जी के मित्र व आभी प्रकाशन के संचालक जगदीश हरनोट विशेष रूप से झाझा पहुंचे थे। जुनगा और झाझा की इन गोष्ठियों का संचालन युवा कवि आत्मारंजन ने किया। एस।आर।हरनोट, दिनेश शर्मा और मोनिका छट्टु ने बाबा भलखू को विनम्र श्रद्धांजलि देते हुए कविताएं पढ़ीं जो बहुआयामी अर्थों को लिए हुए थी। बी आर मेहता जी के साथ जिन अन्य लोगों ने कविताओं का पाठ किया उनमें विनोद प्रकाश गुप्ता, सुदर्शन वशिष्ठ, कुल राजीव पंत, आत्मा रंजन, अश्विनी गर्ग, सतीश रत्न, गुप्तेश्वर नाथ उपाध्याय, राकेश कुमार सिंह, नरेश दयोग, शांति स्वरूप शर्मा, कुशल मुंगटा, कल्पा गांगटा, उमा ठाकुर, धनंजय सुमन शामिल थे।

लेखकों ने झाझा गांव में एक प्रस्ताव भी पारित किया जिसमें केन्द्र सरकार और प्रदेश सरकार से मांग की गई कि शिमला कालका रेल लाइन को चायल झाझा गांव तक ले जाया जाए, उनके पुश्तैनी मकान को धरोहर भवन के रूप में सुरक्षित किया जाए और झाझा गांव को भी धरोहर गांव के रूप में विकसित किया जाए। साथ ही चायल में स्थित भलखू पार्क को उनके धरोहर दस्तावेजों को सुरक्षित रखते हुए उसका सौन्दर्य करण किया जाए। आयोजन की समाप्ति पर विनोद प्रकाश गुप्ता और एस आर हरनोट ने इस यात्रा में शामिल लेखकों का और समस्त ग्रामीणजनों का आभार व्यक्त किया।

साहित्य सप्तक समारोह

□ **राजेन्द्र मोहन शर्मा**

(जयपुर पीस फ़ाउण्डेशन के तत्वावधान में 17 से 23 सितम्बर तक जयपुर में पहली बार साहित्य सप्तक कार्यक्रम का आयोजन किया गया। समारोह के दौरान प्रतिदिन साहित्य की एक विधा के साहित्यकार का सम्मान और उस विधा की समकालीन स्थिति पर विद्वान वक्ताओं द्वारा गहन विचार विमर्श किया गया। जयपुर पीस फाउंडेशन के अध्यक्ष प्रोफ़ेसर नरेश दाधीच ने बताया कि यह आयोजन प्रतिवर्ष होगा। प्रोफ़ेसर दाधीच ने बताया कि हिंदी साहित्य सृजन की विरासत और समकालीन साहित्य से युवाओं को परिचित कराने तथा उससे अपने साहित्य सृजन को समृद्ध करने की दृष्टि से ही यह आयोजन किया जा रहा है। समारोह के सलाहकार वरिष्ठ कवि कृष्ण कल्पित,वरिष्ठ व्यंग्यकार -कवि फारूक आफरीदी डॉ जगदीश गिरी और राकेश कुमार रायपुरिया समारोह के सह-संयोजक की इसमें महत्वपूर्ण भूमिका रही। सभी कार्यक्रम फाउंडेशन के सभागार 23/84 स्वर्ण पथ, मानसरोवर, जयपुर में हुए। प्रस्तुत है विस्तृत रिपोर्ट—सं।

पीस फ़ाउन्डेशन के तत्वावधान में 17 सितम्बर को साहित्य सप्तक समारोह के तहत मानसरोवर में प्रतिष्ठित कवि सवाई सिंह शेखावत को काव्य सृजन के लिए सारस्वत सम्मान से समादृत किया गया। वरिष्ठ कवि हेमन्त शेष ने कार्यक्रम की अध्यक्षता की। कार्यक्रम में समकालीन कविता विमर्श हुआ जिसमें कृष्ण कल्पित, मायामृग, सत्यनारायण, पृणु शुक्ला की भागीदारी रही। वरिष्ठ कवि कृष्ण कल्पित ने कहा कि सवाई सिंह शेखावत कविता के मौन साधक है और उन्होंने बिना किसी प्रत्याशा के कविता की साधना की है उनके सात कविता संग्रह इस साधना के ही परिणाम है। हेमन्त शेष ने कहा कि श्रेष्ठ रचना अच्छे विचार को साथ लेकर चलती है और उन्होंने कविता को कला की आवश्यकता बतलाया। शेखावत ने अपने सम्मान के लिए आभार व्यक्त करते हुए चुनिंदा रचनाएँ भी सुनाई।

18 सितम्बर को कथेतर साहित्य के लिए डॉ सत्यनारायण को सारस्वत सम्मान प्रदान किया गया। फ़ाउण्डेशन के अध्यक्ष डॉ नरेश दाधीच ने शाल ओढ़ाकर तथा डॉ दुर्गाप्रसाद अग्रवाल। समारोह के संयोजक राजेन्द्र मोहन शर्मा, प्रदीप सैनी ने सारस्वत सम्मान पत्र एवं स्मृति चिन्ह प्रदान कर डॉ सत्यनारायण को सम्मानित किया। प्रतिष्ठित लेखक डॉ सत्यनारायण ने इस मौके पर अपनी साहित्यिक डायरी के संस्मरण सुनाए। डॉ दुर्गाप्रसाद अग्रवाल की अध्यक्षता में आयोजित समकालीन कथेतर गद्य साहित्य पर गंभीर विमर्श सत्र हुआ। इस सत्र में डॉ जगदीश गिरि, डॉ मनु शर्मा डॉ प्रणु शुक्ला ने चर्चा में हिस्सा लिया।

19 सितम्बर को कथा साहित्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान के लिए प्रतिष्ठित कथाकार और राजस्थान हिंदी विभाग की पूर्व अध्यक्ष डॉ सुदेश बत्रा को सारस्वत सम्मान से समादृत किया गया। फाउंडेशन के अध्यक्ष प्रोफ़ेसर नरेश दाधीच ने शाल ओढाकर, समारोह के संयोजक राजेन्द्रमोहन शर्मा, समारोह के अध्यक्ष प्रबोध गोविल ने सारस्वत सम्मान पत्र और नीलिमा टिक्कू ने माल्यार्पण कर डॉ बत्रा का अभिनन्दन किया। समकालीन कथा साहित्य पर प्रबोधकुमार गोविल की अध्यक्षता में चर्चा सत्र का आयोजन किया गया। इस सत्र में लब्ध प्रतिष्ठ कथाकार चरण सिंह पथिक, साहित्य समर्था की संपादक नीलिमा टिक्कू और प्रदीप सैनी सहित अन्य साहित्यकारों ने सहभागिता निभाई। वरिष्ठ कवि कृष्ण कल्पित ने डॉ सुदेश बत्रा के कथा साहित्य सृजन यात्रा की चर्चा की। समारोह के संयोजक राजेन्द्र मोहन शर्मा ने आभार व्यक्त किया।

20 सितम्बर को सुप्रसिद्ध साहित्यकार और आलोचक डाक्टर जीवन सिंह को सारस्वत सम्मान प्रदान किया गया। डॉक्टर जीवन सिंह ने कहा कि आज आलोचना के क्षेत्र के सामने सर्वाधिक चुनौती है और यह चुनौती कोई और नहीं बल्कि सत्ता में बैठे तानाशाह दे रहे हैं। भारत सहित पूरी दुनिया में यह गंभीर चुनौती उपस्थित हो गई है। साहित्य हो या राजनीति कोई भी अपनी आलोचना सुनने और समझने को तैयार नहीं है। उन्होंने कहा कि आलोचना का अर्थ निंदा नहीं होता है। मैं स्पष्ट करना चाहता हूं कि यदि किसी क्षेत्र में कोई कमी दिखाई दे और समीक्षक आलोचक उसकी ओर संकेत करें तो उसे गंभीरता पूर्वक स्वीकार करना चाहिए लेकिन आज यह नहीं हो रहा है। देश भक्ति का अर्थ केवल वंदे मातरम और भारत माता के नारे लगाने भर रह गया है। यदि समाज में खंडन है, विभेद है और इस पर आलोचना की जा रही है तो उन्हें दी जाने वाली सुविधाओं की बात समीक्षकों द्वारा कही जा रही है तो उसे न

केवल नकारा जा रहा है बल्कि साहित्यकारों के जीवन पर प्राणघातक हमले किए जा रहे हैं और सबसे अधिक शिकार आलोचक हो रहे हैं।

समारोह के संयोजक राजेंद्र मोहन शर्मा तथा कृष्ण कल्पित और प्रदीप सैनी ने उन्हें शॉल और स्मृति चिन्ह प्रदान कर उनका सम्मान किया। समारोह की अध्यक्षता जाने-माने आलोचक एम एल सुखाड़िया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डॉक्टर माधव हाड़ा ने की।

21 सितम्बर को सुप्रसिद्ध कवयित्री अजंता देव को सारस्वत सम्मान प्रदान किया गया।फाउंडेशन के चेयरमैन प्रोफ़ेसर नरेश दाधीच ने शाल ओढाकर और समारोह के अध्यक्ष लोकेश कुमार सिंह साहिल, समारोह के संयोजक राजेंद्र मोहन शर्मा और प्रदीप सैनी ने सम्मान पत्र तथा स्मृति चिन्ह भेंट किया। इस अवसर पर अजंता देव ने अपनी बेहतरीन ग़ज़लें और गीत सुनाकर सब को सम्मोहित कर दिया। सत्र की अध्यक्षता करते हुए लोकेश कुमर साहिल ने अपनी चुनिन्दा रचनाएँ सुनाई और आयोजन को साहित्य समृद्धि की दिशा में एक ठोस कदम बताया। इस सत्र में जाने माने शायर फारूक इंजिनियर ने आज की शायरी की बदहाली का जिक्र किया और अफ़सोस जताया कि बिना बहर की ग़ज़लों को भी धड़ल्ले से सराहा जा रहा है और उन पर बड़े बड़े मजमून लिखे जा रहे हैं। प्रोफ़ेसर नरेश दाधीच ने बुल्ले शाह और अन्य गीत रचनाएँ सुनाई। सलीम खान फरीद ने गीतों के इतिहास और समकालीन गीतों पर पर्चा पढ़ा और अपनी गज़लें पेश की। नवल दुबे ने भी अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की। कार्यक्रम के संयोजक राजेंद्र मोहन शर्मा ने और सभी का आभार ज्ञापित किया।

22 सितम्बर को इप्टा के राष्ट्रीय अध्यक्ष और सुप्रसिद्ध नाट्य निर्देशक, लेखक और रंगकर्मी रणबीर सिंह का सम्मान किया गया। रणबीर सिंह ने अपने उदबोधन में कहा कि नाटक हमारे जीवन और सामाजिक परिवर्तन का प्रमुख आधार रहा है। आजादी का आन्दोलन हो या या देश और दुनिया में जितनी भी क्रांतियाँ हुई है , उसके पीछे नाटकों की प्रस्तुतियों ने बदलाव लाने में महती भूमिका निबाही है। नाटक मनुष्य के मस्तिष्क पर सीधा असर करता है। नाटक का उद्देश्य सिर्फ मनोरंजन करना भर नहीं है बल्कि वह समाज की विसंगातियों और विद्रूपताओं को सामने रखकर समाज को आइना दिखाता है। उन्होंने चिंता जाहिर की कि वर्तमान दौर में नए नाटक नहीं लिखे जा रहे हैं। जनता अच्छे नाटक देखना चाहती है और नाटककारों को जनता के बीच जाने की जरुरत है। आज के चुनौती भरे दौर में नाटककारों और कलाकारों की अहम् भूमिका है जिसे गंभीरता से समझने की जरुरत है। समकालीन नाटक पर आयोजित चर्चा सत्र में प्रसिद्ध रंगकर्मी मुकेश चतुर्वेदी और लोकनाट्य तमाशा के प्रसिद्ध कलाकार दिलीप भट्ट की सहभागिता रही

समरोह के अंतिम दिन 23 सितम्बर को व्यंग्य साहित्य में अमूल्य अवदान के लिए सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार फारूक आफरीदी को सारस्वत सम्मान प्रदान किया गया। फ़ाउण्डेशन के अध्यक्ष डॉ नरेश दाधीच ने शाल ओढ़ाकर तथा समारोह के संयोजक राजेन्द्र मोहन शर्मा, कृष्ण कल्पित, डॉ अतुल चतुर्वेदी और प्रदीप सैनी ने सारस्वत सम्मान पत्र एवं स्मृति चिन्ह प्रदान कर आफरीदी को सम्मानित किया। व्यंग्य साहित्य के महत्व की चर्चा करते हुए प्रतिष्ठित व्यंग्यकार फारूक आफरीदी ने कहा कि व्यंग्यकार समाज में नैतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना और विसंगतियां दूर करने की लड़ाई लड़ता है। वह अन्याय, शोषण और भ्रष्टाचार के विरुद्ध एक पहरुए की भांति खड़ा होता है।इस प्रकार वह एक एक्टिविस्ट की भूमिका निभाता है। आफरीदी ने इस मौके पर अपनी व्यंग्य रचना भी पढ़ी।

समकालीन व्यंग्य साहित्य सत्र की अध्यक्षता करते हुए वरिष्ठ व्यंग्यकार राजेन्द्र मोहन शर्मा ने कहा कि व्यंग्य अभी किशोरावस्था में है और अभी इसे कई पड़ाव तय करने है। लोक क्षेत्र में व्यंग्य उसके पानी में है। व्यंग्य जहाँ दुःख होता है जहाँ सुख और पेट भरा होता है वहां तो सिर्फ गाथाएँ पैदा होती है। । उन्होंने अपना एक व्यंग्य भी पढ़ा।

प्रतिष्ठित व्यंग्यकार डॉ. अतुल चतुर्वेदी ने कहा कि व्यंग्यकार साहस के साथ समाज और राजनीति में फैली गन्दगी की सफाई का काम करना पड़ता है। व्यंग्य के जरिए वह लोक जागरण का काम भी करता है। आज व्यंग्यकार के सामने अनेक चुनौतियां मौजूद हैं और अनेक नए-नए विषय हैं। डॉ. अजय अनुरागी और रमेश खत्री ने भी व्यंग्य की स्थिति और वर्तमान चुनौतियों की चर्चा की। ईश मधु तलवार ने सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार पद्मश्री ज्ञान चतुर्वेदी के व्यंग्य संग्रह 'पागलखाना' की समीक्षा करते हुए बताया कि बाजारवाद किस तरह समाज को लील रहा है। इससे पूर्व हास्य व्यंग्य के जाने माने कवि संपत सरल ने अपनी व्यंग्य कथाओं का पाठ किया। प्रारंभ में कृष्ण कल्पित ने आफरीदी के व्यंग्य लेखन पर प्रकाश डाला। समारोह में पद्मश्री शाकिर अली समेत बड़ी संख्या में साहित्यकार और विभिन्न महाविद्यालयों- विश्वविद्यालयों के शोधार्थी तथा साहित्य के छात्र मौजूद थे।

संपर्क - 9829187033

ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन

□ **विकास साल्याण**

(देस हरियाणा फ़िल्म सोसाइटी के तत्वावधान में डा. ओमप्रकाश ग्रेवाल अध्ययन संस्थान, कुरुक्षेत्र में 2 सितंबर 2018 को पर्यावरण संकट पर केन्द्रित फ़िल्म 'कार्बन' की प्रस्तुति की गई, जिसमें विभिन्न विद्वानों, बुद्धिजीवियों व नागरिकों ने फ़िल्म पर चर्चा में हिस्सा लिया। फिल्म में मुख्य भूमिका में यशपाल शर्मा, जैकी भगनानी,नवाजुद्दीन सिद्दिकी, प्राची देसाई हैं । इस संवेदनशील फ़िल्म का निर्देशन व स्क्रीन-प्ले किया है मैथ्री बाजपेयी, रमीज इल्लम खान ने और संगीत दिया है सलीम-सुलेमान ने । प्रस्तुत है संक्षिप्त रिपोर्ट - सं.)

कार्बन फिल्म गंभीर पर्यावरणीय मुद्दों जैसे ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन और हमारी दुनिया पर उनके प्रभाव से संबंधित है। वर्तमान में हो रहे पर्यावरण-प्रदूषण की वजह से हमारा भविष्य क्या होगा कल्पना के माध्यम से इसकी एक तस्वीर पेश करती है ।

फिल्म में दिखाया गया है कि वर्ष 2067 में दुनिया से ऑक्सीजन और पानी समाप्त हो गए और कार्बन की अधिकता के कारण हार्ट फैल हो रहे हैं । लोगों को सांस लेने लायक हवा और प्यास बुझाने के लिए पानी तक नहीं मिलता है। अब स्वच्छ हवा और पानी एक बिजनेस बन गया है। जिसे धरती पर माफिया के द्वारा चलाया जाता है। जैसे सोना और ड्रग का कारोबार होता है, वैसे ही कार्बन फिल्म में ऑक्सीजन का कारोबार दिखाया गया है। अमीर लोग मार्स ग्रह पर चले गए है गरीब लोग यहा मर रहे हैं।

फ़िल्म की सार्थकता की बात करें तो वर्तमान में जिस तरह औद्योगिक कारखाने वायु और जल को प्रदूषित कर हैं, प्रकृति का दोहन हो रहा है पेड़ काटे जा रहे हैं। दिल्ली जैसे शहरों में जहरीली गैसों की वजह सांस लेना ही मुश्किल हो रहा है। मानव जीवन सबसे महत्वपूर्ण है, लेकिन विकास की दिशा जीवन के लिए खतरा है । फ़िल्म को देखने के पश्चात दर्शकों के चेहरे पर वर्तमान और भविष्य को लेकर चिंता साफ दिखाई दे रही थी।

देस हरियाणा फ़िल्म सोसाइटी के संयोजक विकास साल्याण ने तथ्यों के माध्यम से अपने विचार रखते हुए कहा कि महात्मा गांधी जी ने कहा था – हमारा भविष्य क्या होगा, यह हमारा वर्तमान तय करता है । वर्तमान तो आप तो इस समय आपके सामने है और भविष्य की एक धुँधली सी झलक हम "कार्बन" फ़िल्म के माध्यम से देख सकते है । फ़िल्म को देख कर हमारी रूह को एक बार के लिए डर तो लगता है पर हम सचेत कितने होंगे इस गंभीर विषय को लेकर यह अपने आप में एक अहम सवाल है । अंतराष्ट्रीय ऊर्जा एजेंसी द्वारा जारी रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2017 में कार्बन डाई-ऑक्साईड CO_2 का उत्सर्जन 32.5 गीगाटन पहुँच गया है । जोकि वर्ष 2016 के मुकाबले दोगुना है। दरअसल पेरिस जलवायु समझौता 2015 जो कार्बन उत्सर्जन को कम करने के लिए हुआ था पर अमेरिका का उससे वाक-आऊट करना साफ प्रदर्शित करता है कि जलवायु से कुछ लेना देना नहीं है, उसका मकसद है सिर्फ शक्तिशाली बने रहना।

विश्व में कार्बन उत्सर्जन का 15 प्रतिशत योगदान अमेरिका देता है और अमेरिका कभी नहीं चाहता की वह किसी भी प्रकार से आर्थिक हानि उठाए क्योंकि पैरिस जलवायु समझौते में कार्बन का उत्सर्जन कम करने के लिए कोयला,परमाणु व तेलीय औद्योगिक कारखानों में कमी लाना और अमीर देश गरीब देशों के लिए 6.44 लाख करोड़ रूपये दिए जाने थे जिसमें अमेरिका का महज हिस्सा 600 करोड़ रूपये था । लेकिन समझौते के अनुसार अमेरीका को 2025 तक कार्बन का उत्सर्जन 25% घटाना था। लेकिन ट्रम्प ने हास्यास्पद बात कहते हुए इससे पल्ला झाड़ा कि इस समझौते से तो केवल चीन और भारत को फायदा होगा । अमेरिका के हट जाने से इस समझौते का नेतृत्व चीन ने किया और कार्बन का उत्सर्जन कम करने की बात कही। लेकिन अन्तराष्ट्रीय उर्जा एजेंसी के अनुसार 2017 में चीन का कुल कार्बन उत्सर्जन 1.7% बढकर 9.1 गीगाटन हुआ ।

इसी तरह 1997 में क्योटो जलवायु समझौता था

जिसमें ग्रीन हाऊस गैसों का वैश्विक उत्सर्जन कम करना था लेकिन आकंड़ो के मुताबिक ग्रीन हाऊस गैसों कमी नहीं आई, बल्कि बढ़ोतरी ही हुई है।

भारत की स्थिति है कि गंगा तो साफ करनी है पर गंगा को खराब करने वाले पूंजीपतियों के कारखानों को कुछ नही कहेंगे । देश-दुनिया में प्रकृति का दोहन कर पूंजीपति वर्ग अमीर बनता जी रहा है और इसका हर्जाना भुगतना पड़ रहा है गरीब आम जनता को।

Environment Perfomance Index के द्वारा 23 फरवरी 2018 को एक आंकड़ा प्रस्तुत किया जिसमें 180 देशों को पर्यावरण को बचाने को लेकर रेंक प्रदान की गई। इसमें स्विटजरलेंड 87.42 स्कोर के साथ पहले स्थान पर और फ्रांस दूसरे स्थान पर था। भारत ने इस लिस्ट में अंतिम 5 में स्थान पाया जो 2016 के मुकाबले 36 स्थानों की गिरावट दर्ज की गई। इससे लगता है कि स्वच्छ भारत अभियान पर अरबों-खरबों रुपये के विज्ञापन खर्च करने का कोई लाभ नहीं हुआ।

एक व्यक्ति को जिंदा रहने के लिए अपने आसपास 16 बड़े पेड़ों की जरूरत होती है। एक रिपोर्ट के अनुसार 18 पेड़ काटे जाने पर सिर्फ एक ही पेड़ लगाया जा रहा है। पृथ्वी पर जीवन के लिए एक तिहाई पेड़ होने चाहे पर इस समय केवल 11%पेड़ ही संरक्षित है।

पर्यावरण के साथ यही सुलूक रहा तो केरल और केदारनाथ जैसी महात्रासदियों से भी भयानक स्थिति हो सकती है। ग्लोबल वार्मिंग की वजह से अगर पृथ्वी के तापमान में 1% वृद्धि होती है तो समुन्द्र किनारे के राज्य जलमग्न हो जाएंगे । अगर दो प्रतिशत तापमान की बढ़ोतरी होती है तो अंडमान-निकोबार, लन्दन, फ्रांस जैसे देश पानी में ही समा जाएंगे। पृथ्वी पर जीवन के लिए कितनी प्राकृतिक संसाधनों की आवश्यक्ता होती है उसका बैलेंस परिस्थितिक तंत्र (Ecological Footprint) करता है। अगर उसमें गड़बड़ होती है तो प्रकृति अपने आपको संतुलित करती है और उस स्थिति में भारी तबाही भुगतनी पड़ती है।

अश्वनी दहिया ने कहा मैं सबसे पहले तो 'देस हरियाणा' की टीम को बधाई देना चाहूंगा। नीति के मामले में सरकारें पर्यावरण को लेकर संतोषजनक काम नही कर रही हैं। पर्यावरण का संकट हमारे लिए चिंता विषय है।

डा.कृष्ण कुमार ने पर्यावरण के संकट को साहित्य से जोड़ते हुए बताया कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्ध 'नाखून क्यों बढते हैं' का उदाहरण देते हुए कहा कि उन नाखूनों को तो हमने काट लिया जो बाहर निकल गए थे पर उन नाखूनों को कैसे काटेंगे जो हमारे अन्दर बढ़ते जा रहे हैं। हमारी मानवीय संवेदना समाप्त हो रही है और उसके स्थान पर हैवानीयत बढ़ रही है। हम अपने रहने के स्थान को ही कैसे उजाड़ रहे है इसका भी हमे कोई ध्यान नही है।

हरपाल शर्मा ने कहा कि पर्यावरण संकट बहुत दिनों से महसूस कर रहे हैं पर सरकार का रुख ऐसा है कि जैसे पर्यावरण संकट जैसी कोई समस्या है ही नहीं।

गीतापाल ने कहा पर्यावरण को बचाने की बात तो सभी कर रहे हैं पर पर्यावरण को बिगाड़ कौन रहा है यह अहम सवाल हैं। इस सवाल को समझकर इसकी जाँच-पड़ताल करनी चाहिए और उसे चिन्हित कर उस पर बातचीत होनी चाहिए। एन.जी.ओ. की स्थापना कर पर्यावरण संकट से बचने के लिए प्रयास करने चाहिए।

सुरेन्द्रपाल सिंह ने कहा विकास का वर्तमान मॉडल पर्यावरण को बिगाड़ रहा है। हरित क्रान्ति से लगा था कि देश में विकास होगा परन्तु उसने कैंसर जैसी भयंकर बीमारियों का उत्पादन किया। पर्यावरण की समस्या अमीर गरीब की समस्या नहीं, बल्कि पूरे मानव समाज की समस्या है।

देस हरियाणा पत्रिका के संपादक डा.सुभाष चन्द्र ने कहा पर्यावरण का संकट हमारे सामने विकट समस्या है जिस तरह पानी कि किल्लत को देखते हुए पानी की बोतल तो लोग अपने साथ रखने लग गए हैं वो दिन भी अब दूर नही जब हमें ऑक्सीजन को भी साथ रखना पड़ेगा।

डा. सुभाष चंद्र ने बताया कि देस हरियाणा फिल्म सोसाइटी के माध्यम से हर महीने ही सामाजिक सरोकारों से जुड़ी फिल्मों का प्रदर्शन किया जाएगा और उस पर गंभीर चर्चा होगी जिससे हरियाणा में फिल्म देखने के नजरिये में गुणात्मक बदलाव आएगा। सभी दर्शकों का धन्यवाद किया और फिल्म के कलाकारों का, निर्देशक का भी धन्यवाद किया जिंहोंने पर्यावरण के प्रति संवेदित करने वाली फिल्म का निर्माण किया। इस परिचर्चा में सरिता चौधरी, सुनील कुमार थुआ, अजय शर्मा, राजविंद्र चंदी समेत कई लोगों ने फिल्म की सराहना करते हुए पर्यावरण के मुद्दे पर रचनात्मक कार्य करने के लिए बल दिया।

संपर्क - 9991378352

1. अगर हम उपयोग करके फैंके गए बैग, सकोच, पैन को एक सिरे से दूसरा सिरा जोड़ेंगे, तो वह हमारी पृथ्वी को 348 बार लपेट लेंगे।

2. प्रत्येक वर्ष 45000 टन प्लास्टिक कचरा विश्व के समुद्रों में पहुंचता है, जिसके कारण करीब 10 लाख समुद्री पक्षी और लाखों समुद्री जीव मारे जाते हैं।

3. भारत में प्रत्येक व्यक्ति 100 ग्राम प्रतिदिन से लेकर 900 ग्राम कचरा उत्पन्न करता है।

4. प्लास्टिक/पोलिथीन कचरे को पर्यावरण में पूरी तरह खत्म होने में लगभग 80 से 100 साल तक का समय लगता है। प्लास्टिक के टुकड़े खेतों में कृषि उत्पाद को कम करते हैं, बारिशों में शहरी बाढ़ एवं जलभराव को अंजाम देते हैं। एक आंकड़े के अनुसार हमारे देश में 20 गाय प्रतिदिन प्लास्टिक बैग को खाने से मर जाती हैं।

ठोस अपशिष्ट प्रबंधन

□ **डा. हरदीप राय शर्मा**

(जीवन जीने के क्रम में मनुष्य कूड़ा कचरा उत्पन्न करता है, लेकिन अब कूड़े-कचरे को ठिकाने लगाने की समस्या एक विकराल रूप धारण कर चुकी है। पर्यावरण के लिए यह संकट पैदा कर रही हैं। इसके प्रति कुछ व्यावहारिक सुझाव देता हरदीप राय शर्मा का आलेख प्रस्तुत कर रहे हैं। डा. हरदीप राय शर्मा कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय कुरुक्षेत्र के इंस्टीच्यूट आफ इन्वायरमैंटस स्टडीज में सहायक प्रोफेसर के पद पर कार्यरत हैं। पर्यावरण के संबंध में उनकी गहरी समझ है। - सं।)

वो पदार्थ और वस्तु जो मनुष्य के किसी काम की न हो या उसका काम समाप्त हो जाने पर फैंक दी जाए, 'अपशिष्ट' या आम भाषा में कूड़ा कहलाती है। उदाहरण के तौर पर टॉफी की पन्नियां, केले के छिलके, दूध व बिस्कुट आदि के खाली पैकेट हमारी रोजमर्रा की जिंदगी का हिस्सा हैं।

अपशिष्ट के अनेक प्रकार हैं जैसे ठोस अपशिष्ट, तरल अपशिष्ट, गैसीय अपशिष्ट, औद्योगिक अपशिष्ट, घरेलू अपशिष्ट, व्यापारिक अपशिष्ट, खतरनाक मलजल स्टेज, खानकर्म संबंधी, चिकित्सा संबंधी, कृषि संबंधी, शहरी अपशिष्ट आदि...

घरों से निकलने वाले अपशिष्ट हैं - खाली बोतलें, डिब्बे, रद्दी-कागज, फलों और सब्जियों के छिलके, बचा हुआ या खराब भोजन, पोलिथीन आदि।

दुकानों से निकलने वाले अपशिष्ट हैं - रद्दी कागज, पोलिथीन, खाली पैकेट, डिब्बे आदि

चिकित्सा संबंधी अपशिष्ट में दवाई की खाली शीशियां, एक्सपाईरी दवाइयां, इस्तेमाल की गई सिरिंज, गलोवज, पट्टियां आदि आते हैं।

निर्माण तथा दहन अपशिष्ट में कचरा, कंकरीट, लकड़ी-लोहे के अपशिष्ट, रोड़ी ईंटें आदि आती हैं।

औद्योगिक अपशिष्ट में भी बहुत से पदार्थ आते हैं जोकि उस औद्योगिक इकाई, उसमें इस्तेमाल होने वाला कच्चा माल, औद्योगिक क्रिया पर निर्भर करते हैं। औद्योगिक अपशिष्ट के मुख्य स्रोत हैं रसायनिक उद्योग, धातु एवं खनिज संसाधन उद्योग। अणु बिजली घरों से रेडियोधर्मी अपशिष्ट उत्पन्न होते हैं। ताप बिजली घरों से प्रचूर मात्रा में फलाई व बोटम आस्क पैदा होती है।

खराब कम्पयूटर, इलैक्ट्रोनिक सर्किट, खराब मोबाइल ये सब ई-वेस्ट का हिस्सा बनते हैं। अपशिष्ट पदार्थों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। एक वो जो सूक्ष्म जीवों की क्रिया से अपघटित हो जाते हैं। उन्हें हम जैव उपघटनकारी अपशिष्ट कहते हैं। दूसरे वो जो सूक्ष्म जीवों द्वारा अपघटित नहीं हो सकते।

अपशिष्ट प्रबंधन

किसी भी प्रकार के अपशिष्ट प्रबंधन के अंतर्गत छः कार्य आते हैं।

पहला - अपशिष्ट उत्पादन: यह प्रक्रिया हमारे हाथ में न होकर अपशिष्ट पैदा करने वाले के हाथ में होती है। क्योंकि कब, किस समय किस वस्तु को अपशिष्ट बनाना है, यह तो उसके निर्माता या उसके उपभोक्ता पर निर्भर करता है।

दूसरा - अपशिष्ट स्रोत पर अपशिष्ट का पृथक्कीकरण, जमाकरण एवं प्रसंस्करण, जिसमें अपशिष्ट में से पुनःप्रयोग में आए जा सकने वाली चीजों को अलग करना, बचे हुए कूड़े को कूड़ादान में डालना, ये कार्य भी मुख्यतः घर, दुकान, उद्योग,

फैक्टरी के मालिक/मुखिया के अंतर्गत आता है।

तीसरा - अपशिष्ट का विभिन्न-विभिन्न जगहों से इकट्ठा करके उसे अपशिष्ट निपटान या उसे पृथक्कीरण के स्थान पर भेजना। अपशिष्ट प्रबंधन पर कुल आने वाली लागत का लगभग 50 प्रतिशत इसी तीसरे पहलू पर खर्च होता है और यह कार्य नगरपालिका, निजी कंपनियों या गैर सरकारी संगठनों के तहत आता है।

चौथा - अपशिष्ट पृथक्कीकरण के स्थान पर मशीनों व मानवशक्ति द्वारा अपशिष्ट को जैविक, अजैविक, धातु, ज्लवनशील आदि भागों में विभक्त करना। इस स्थान पर अपशिष्ट में से सभी काम आ सकने वाली वस्तुएं अलग कर ली जाती हैं।

पांचवां - अपशिष्ट स्थानांतरण में छोटे वाहनों द्वारा भीड़ भरे इलाकों से इकट्ठा किए गए कूड़े-कचरे अपशिष्ट को बड़े वाहन में स्थानांतरित किया जाता है। अपशिष्ट परिवहन में अपशिष्ट को दूरदराज स्थान पर निपटान हेतु भेजा जाता है। परिवहन में ट्रकों, रेल यातायात और पानी के जहाज का इस्तेमाल भी काफी मामलों में हुआ है।

छटा - अपशिष्ट निपटान प्रक्रिया जिसमें 6 तरीके आते हैं, जिसमें भूमि भराव और भष्मीकरण प्रमुख है।

ठोस अपशिष्ट पदार्थों के प्रभाव

शहरी ठोस कूड़ा कर्कट सुचारू निपटान न होने के कारण सड़कों, रास्तों एवं खाली जगहों पर ढेरों में पड़ा रहता है। इस तरह के निपटान से जैविक अपघटनकारी पदार्थ खुले में एवं अस्वस्थ अवस्था में अपघटित होने लगता है। इससे दुर्गंध उत्पन्न होती है तथा इसमें बहुत से मक्खी, मच्छर और अन्य कीट पलने लगते हैं, जो कई प्रकार के रोगों को फैलाते हैं। फैले हुए कचरे के ढेर आवारा पशुओं जैसे कि गायों, कुत्तों, सुअरों आदि को आकर्षित करते हैं। कभी-कभी देखने में आता है कि नर्सिंग होम आदि का कचरा आदि भी नगरपालिका के कचरे के साथ ही फैंक दिया जाता है, जो कि कचरा उठाने वाले कर्मचारियों और कूड़ा बीनने वाले गरीब व्यक्तियों की सेहत के लिए नुक्सानदायक होता है।

औद्योगिक ठोस अपशिष्ट, विषैले धातुओं का स्रोत होते हैं। ऐसे संकटकारी अपशिष्ट भूमि पर फैल कर वहां की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक विशेषताओं को बदल सकते हैं। जिससे भूमि की उत्पादकता भंग होती है। विषैले पदार्थ रिसकर नीचे चले जाते हैं तथा भूमिगत जल को प्रदूषित करते हैं। कचरे के सुचारू निपटान न होने से उस स्थान की भू-आकृति नष्ट होती है और उसे जलाने से वायु प्रदूषण होता है। ठोस अपशिष्ट से होने वाले प्रभाव का एक उदाहरण है।

लव कैनाल दुर्घटना जोकि न्यूयार्क के नियागरा फाल्स के एक उपनगर में हुई थी। लव कैनाल नाम की एक नहर विलियम लव द्वारा बनाई गई थी। इसे खोद कर उसमें हूकर्स कैमिकल एंड प्लास्टिक कार्पोरेशन द्वारा 1942 से 1953 तक रसायनिक कचरे के बंद स्टेड के डिब्बे फैंके जाते रहे। 1953 में कम्पनी ने इस निपटान स्थान को मिट्टी एवं ऊपरी तह भूमि से ढककर नगर के शिक्षा बोर्ड को बेच दिया। बोर्ड ने वहां एक प्राईमरी स्कूल और घरों का निर्माण किया। सन् 1976 में रहने वालों ने दुर्गंध आने की शिकायत की तथा उस जगह पर खेलने वाले बच्चों को रसायनिक जलन व धब्बे होने लगे। सन् 1977 में, स्टील डिब्बों को जंग लगने से, उनमें बंद रसायन रिसने लगे तथा मलजल नालियों में आने लगे तथा घरों एवं स्कूल के तलों में भी आने लगे। इस रिसाव में 26 के करीब विषैले पदार्थों की पहचान की गई। इस निपटान स्थान को चिकनी मिट्टी से फिर ढका गया तथा रिसने वाले अपशिष्टों को पम्पों द्वारा निकाल कर साफ करने के लिए भेजा गया तथा प्रभावित परिवारों के पुनर्वास का प्रबंध किया गया। लव कैनाल जैसे और भी बहुत से निपटान स्थान हो सकते हैं जो कि भूमिगत प्रदूषण के साथ-साथ वहां रहने वालों को भी नुक्सान पहुंचा रहे हों।

कचरा निपटान के विभिन्न तरीके

पहला आम तरीका है कचरे को किसी खुली जगह पर फैंक देना। हमारे भारत में यह तरीका काफी प्रचलन में है। काफी शहरों को नगरपालिका भी कचरे को इकट्ठा कर उसे शहर से कहीं दूर खाली जगह पर फैंक देती है, जिससे अलग-अलग तरह की पर्यावरण संबंधी समस्याएं उत्पन्न होती हैं।

दूसरा तरीका है कचरे को आबादी से दूर किसी जगह पर फैंक कर उसे मिट्टी से ढक देना, जिससे कि वहां मक्खी, मच्छर, कीट आदि आकर्षित न हों और न ही उनका प्रजनन हो। इस तरीके से कचरे से उठने वाली दुर्गंध भी कम हो जाती है। यह तरीका ठीक उसी प्रकार का है, जिस प्रकार एक बिल्ली अपने मल को मिट्टी से ढक देती है।

तीसरा तरीका है स्वास्थ्यकर भूमि भराव। इस तरीके के अंतर्गत सबसे पहले उपयुक्त जगह का चुनाव किया जाता है। जगह का चयन करते समय उस स्थान की मिट्टी, भूमिजल का स्तर, आबादी से दूरी, सड़कों द्वारा आसानी से पहुंच, स्थानीय जलवायु परिस्थितियों का विशेष ध्यान रखा जाता है। उपयुक्त जगह का चयन होने के बाद उस स्थान की जल निकासी का भी काम भी किया जाता है, जिससे बारिश के मौसम में वहां जल

भराव की समस्या न हो। इन सब के बाद वहां पर खुदाई करके उस भूमि तल को ऊपरगामी पट्टियों जोकि प्रायः चिकनी मिट्टी की कई तहें, अच्छी क्वालिटी के प्लास्टिक या अन्य जियोटैक्सटाइल (भू-वस्त्र) को बिछाया जाता है। ये तहें कचरे से रिसने वाले घुलाव को भूमि जल में जाने से रोकते हैं। तहों को अच्छी प्रकार भूमि तल व दीवार की ओर बिछाने के बाद उसमें कचरे को पतली तहों में फैलाया जाता है। कचरे को फैलाने से पहले उसमें से ग्लास, लोहे, एल्यूमीनियम के टुकड़े, प्लास्टिक, चमड़ा, कपड़ा, कागज आदि को अलग कर लिया जाता है। कचरे को खोदी हुई जगह पर फैंकने के बाद उसकी अच्छी तरह से दबाई की जाती है और फिर उसे चिकनी मिट्टी, ईंट भट्ठे या किसी फैक्ट्री की राख से ढक दिया जाता है। जब भूमि भराव पूरा हो जाता है, तो पुनः इसे चिकनी मिट्टी, रेत-बजरी तथा ऊपरी भूमि से ढक दिया जाता है, ताकि बारिश का या अन्य पानी रिसकर अन्दर न जा सके। भूमि भराव के निकट कुछ कुएं भी खोदे जाते हैं, जिनसे यह पता लगता है कि कहीं भूमि भराव का कोई रिसाव भूमिगत पानी को प्रदूषित तो नहीं कर रहा? भूमि भराव से उत्पन्न होने वाली गैस जिसे हम लैंडबिल गैस कहते हैं, इकट्ठी कर ली जाती है और कहीं-कहीं ऊष्मा एवं बिजली पैदा करने के लिए जलाई जाती है।

स्वास्थ्यकर भूमि भराव के बाद विभिन्न प्रकार के कचरे भस्मीकरण प्रबंधन का दूसरा ऐसा मुख्य उपाय है, जिसमें कचरे के ज्वलनशील पदार्थों को ऊंचे तापमान पर भस्म कर दिया जाता है। इस उपाय का मुख्य उद्देश्य कचरे की मात्रा और संक्रामकता को कम करने के साथ-साथ उसमें से ऊर्जा उत्पादन करना भी होता है। कचरे को जलाने से पहले उसे छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर सुखा लिया जाता है, जिससे कि वो आसानी से जल जाए। जलाने वाले कचरे में प्लास्टिक, धातुओं और ईंट पत्थरों का होना कचरा भट्ठी की उम्र व क्षमता को कम कर देता है। पृथक-पृथक कचरे के लिए विभिन्न-विभिन्न प्रकार की कचरा -भट्ठियों का उपयोग होता है ।

अपशिष्ट निपटान का पांचवां तरीका है जानवरों के उपयोग में लाना है। इस तरीके में होस्टलों, होटलों, बड़े समारोहों के बचे हुए खाने को एकत्रित करके उसे सुअरों को खिलाया जाता है। इससे जहां एक तरफ खाने का उपयोग होता है, वहीं दूसरी ओर कचरे की मात्रा में कमी आती है।

छटा तरीका है कम्पोस्ट बनाना। इस प्रक्रिया के तहत कचरे में से जैविक उपघटनकारी घरेलू कचरे को अन्य कचरे से अलग कर लिया जाता है। फिर उस कचरे में आर्द्रता, तापमान, पोषक तत्वों, आमाप को संतुलित करके उसे जैविक खाद में तब्दील किया जाता है। इससे एक अच्छी प्रकार की पोषक समृद्ध तथा पर्यावरण-प्रिय खाद बन जाती है जो भूमि की हालत को सुधार कर उसकी उपजाऊ शक्ति को बढ़ाती है।

साहित्य में कम्पोस्ट बनाने का पहला संगठित उपयोग 1930 में भारत के इंदौर शहर में किया गया और इस प्रक्रिया को इंदौर प्रक्रिया भी कहते हैं। किसानों द्वारा जानवरों के गोबर को कुछ साल तक इकट्ठा कर पुनः उसका उपयोग खेतों में खाद के रूप् में करना भी कम्पोस्ट बनाने की प्राचीन विधि है। कभी-कभी हम लोग अपने बगीचे में जब गड्ढा खोद कर उसमें पत्ते आदि डालकर उसे पुनः मिट्टी से भर देते हैं, यह भी एक कम्पोस्ट बनाने का ही तरीका है। कम्पोस्ट बनाने के लिए केंचुओं का उपयोग करके काफी गैर-सरकारी संस्थाएं केंचुआ खाद का उत्पादन कर अच्छी आमदनी कर रही हैं और अपशिष्ट प्रबंधन में अपना योगदान दे रही हैं।

ठोस अपशिष्ट निवारण के लिए पांच बातों पर जोर दिया जाता है।

पदार्थ के इस्तेमाल में होने वाले कच्चे माल को कम इस्तेमाल करना, किसी वस्तु या सामान की इस्तेमाल अवधी को बढ़ाना।

पुर्नविंचार करना-किसी सामान को खरीदने से पहले यह सोचना चाहिए कि वाकई हमें इसकी जरूरत है।

अपशिष्ट पदार्थों का पुनः प्रयोगः वे डिब्बे अथवा बर्तन को पुनः भरे जा सकते हैं परन्तु फैंक दिए जाते हैं। दुबारा प्रयोग में लाए जा सकते हैं

पदार्थों का पुनःसंसाधन। पुनःसंसाधन का अर्थ है कि फैंकी हुई वस्तुओं जैसे ग्लास, एल्यूमीनियम, लोहे, कागज, प्लास्टिक आदि को पिंघलाकर, गलाकर नए पदार्थ बनाना।

अपशिष्ट की वसूली करना - इसमें कचरे के जमाकरण के स्थान पर ग्लास, एल्यूमीनियम, लोहे, कागज, प्लास्टिक आदि को छांट कर अलग किया जाता है।

इन सभी क्रियाओं से पैसे ऊर्जा, कच्चे माल, भूमि स्थान की बचत होती है तथा प्रदूषण भी कम होता है। कागज का पुनःप्रयोग नया कागज बनाने के लिए वृक्षों की कटाई को कम करेगा। धातुओं का पुनः प्रयोग खनिकर्म को कम करेगा तथा धातु को साफ करने के लिए कम पिंघलाव होगा, जिससे प्रदूषण भी कम होगा।

अपशिष्ट उत्पाद हमारी दैनिक क्रियायों का अभिन्न भाग है, जिसे हम रोक तो नहीं सकते, लेकिन अपनी समझ-बूझ से कम अवश्य कर सकते हैं।

संपर्क - 90349-41121

मार्क्स के जन्म को दो सौ साल पूरे हो चले

□ अमन वासिष्ठ

(मार्क्स के जन्म को दो सौ साल हो चुके हैं, मार्क्स ने समाज को नए ढंग से व्याख्यायित किया। द्वंद्वात्मक भौतिकवाद, ऐतिहासिक भौतिकवाद, वर्ग-संघर्ष के सिद्धांतों को स्थापित किया। मार्क्सवादी विचारधारा ने साहित्य-कलाओं को भी गहरे से प्रभावित किया है। मार्क्स के विचारों ने दुनिया को समझने में क्रांतिकारी परिवर्तन किया। इसके परिणामस्वरुप दुनिया में नई किस्म की व्यवस्थाएं भी स्थापित हुई। मार्क्स के चिंतन को अनेक दार्शनिकों, चिंतकों, राजनीतिक नेताओं ने समृद्ध किया है। वर्तमान में मार्क्स का दर्शन अपनी प्रासंगिकता बनाए हुए है और इसमें निरंतर विकास हो रहा है।

भारत के बारे में मार्क्स ने भी लिखा था और मार्क्सवादियों ने भी भारतीय समाज के हर पहलू को व्याख्यायित किया। मार्क्स की विचारधारा के असली वारिस होने का दावा करने वाले बीसियों राजनीतिक दल भारत में सक्रिय हैं और बीसियों किस्म के मार्क्सवादी भारतीय समाज को निरंतर व्याख्यायित कर रहे हैं। मार्क्सवादी मूल के संगठनों-दलों-बुद्धिजीवियों में तीखी बहस है तो मार्क्सवाद से बाहर के दायरे में मार्क्सवाद के प्रति अजीब किस्म की धारणाएं और संदेह हैं। भारतीय संदर्भ में मार्क्सवाद को लेकर प्रस्तुत है अमन वासिष्ठ की टिप्पणी जो स्वाभाविक है कि कई सवालों की ओर संकेत करती है। इस पर आपके विचार आंमत्रित हैं।

अमन वासिष्ठ शिक्षा विभाग हरियाणा में भौतिक विज्ञान के प्राध्यापक हैं। लोक साहित्य और लोक कलाओं में विशेष रुचि रखते हैं। उनका अध्ययन लोक संस्कृति की विभिन्न धाराओं के अंतःसूत्रों को समझने की जद्दोजहद का हिस्सा है।- सं।)

बीते वक़्त में मार्क्स और उनकी विचार परम्परा की याद एकाएक बढ़ गयी। पिछले साल रूस में हुई क्रान्ति के सौ बरस पूरे हुए और इसके साथ ही मार्क्स के महाग्रंथ 'कैपिटल' प्रकाशन के डेढ़ सौ साल। वहीं इस साल मार्क्स के जन्म को दो सौ साल पूरे हो चले। ऐसे मौके समय का एक चक्र पूरा होने के साथ-२ कुछ बात करने की जगह भी बनाते ही हैं।

मार्क्स 'प्रतिरोध' के प्रतीक रहे हैं। महज़ सीधे-सपाट शोरगुल से भरे 'विरोध' के नहीं - बल्कि 'प्रतिरोध' के ! मार्क्स के नाम से प्रसिद्ध विचार परम्परा जिसे हम 'मार्क्सवाद' कहा करते हैं - वो अब 'मार्क्स' नामक व्यक्ति से बहुत आगे निकल आयी है। यूरोप-अमेरिका-अफ्रीका-रूस और दक्षिण एशिया स्थित भारत के न जाने कितने ही मनीषियों ने गहन परिश्रम से अब 'मार्क्सवाद' को बहुत विस्तार दे दिया है। हालांकि ये सही है कि आज भी मार्क्सवाद की पॉप्युलर छवियाँ तो ज़्यादातर पुरानी ही हैं। जैसे - हड़ताल, चक्का-जाम तालाबन्दी या फिर कसी-भिंची मुट्ठियाँ लहराता कोई आक्रोशपूर्ण एक्टिविस्ट। लेकिन मार्क्सवाद के फ्रेम-भीतर संस्कृति-आलोचना मानव-इतिहास समाजशास्त्र और न जाने कितने विषयों पर गंभीर कार्य भी तो हुआ ही है। आलोचना में जॉर्ज लुकाच और संस्कृति-चिंतन में थियोडोर एडोर्नो - ग्राम्शी या फिर ऐजाज़ अहमद से लेकर पुराने वक़्त में राहुल सांकृत्यायन और आचार्य नरेंद्र देव सरीखे भारतीय विद्वान भी !

मार्क्सवाद के यूँ तो न जाने कितने ही अवदान गिनाये जा सकते हों लेकिन उनमें एक दो पर फिलहाल बात। पहली 'कंट्राडिक्शन' यानी 'अंतर्विरोध' की समझ। मार्क्सवाद ने किसी सामाजिक प्रक्रिया या फिर आर्थिक प्रक्रिया में 'अंतर्विरोधों' की पहचान को केंद्र में ला खड़ा किया। इसे एक लोकप्रिय वैचारिक औजार बनाने का श्रेय मार्क्स को ही है।

भारत में गांधीजी ने समाज की गति में और 'ज़िन्दगी' में भी 'सामंजस्य' को बुनियादी चीज़ माना था। यही वजह है कि मार्क्स की जो आवाज़ है वो कई बार गांधीजी की आवाज़ की तुलना में बहुत आक्रोशपूर्ण दिखाई पड़ती है। इस सबके बावजूद सभ्यता-संस्कृति संबंधी विचार के इलाक़ों में मार्क्सवादी लगातार गांधी को और गांधीवादी मार्क्स को अपने करीब पा रहे हैं। बहुत से विचारकों के नाम गिनाये जा सकते हैं लेकिन उस नाम-सूची में न जाकर इतना भर कहना काफ़ी होगा कि भारतीय मार्क्सवाद में गांधीजी को लेकर जो तल्ख़ी रही है वह अब लगभग समाप्त हो चली है और गाँधीवाद महज़ 'चरखाशास्त्र' न रहकर वर्त्तमान सभ्यता की आलोचना सिखाने का एक ज़रूरी स्रोत बना है।

मार्क्स को लेकर हमारे भारत में एक आलोचना यह भी रही कि उनसे जाति के बारे में कोई बड़ी समझ हासिल नहीं होती। जाति की समझ के लिए आम्बेडकर के पास ही जाना होता है। खुद आम्बेडकर का मार्क्सवाद को लेकर जो दृष्टिकोण था वह एक सीधी लाइन में नहीं चलता। कहीं-२ वो मार्क्सवाद के कटु आलोचक नज़र आते हैं तो कभी हल्की-फ़ुल्की सौहार्द

की खिड़की भी खुल जाती है। मार्क्सवादियों में भी आम्बेडकर को लेकर भारी फसाद रहा है। संसदीय-चुनावी-मार्क्सवाद अब जहाँ ज़्यादातर आम्बेडकर को लेकर 'स्वीकार भाव' से भरा दिखाई पड़ता है वहीं एक हिस्सा आज भी यही मानता है कि आम्बेडकर का मार्क्स की विचारधाराओं को कोई मेल सम्भव नहीं ! हालांकि किशन पटनायक और मधु लिमये जैसे समाजवादियों की धारा बाबा साहेब को बहुत सम्मान से देखती रही है। आगे आने वाले वक़्त में यह देखना दिलचस्प होगा कि भारत में मार्क्सवादी चिंतक जाति को लेकर कैसी समझ विकसित कर पाते हैं। इतना तो तय है कि निरे 'आर्थिक सवालों' के रास्ते भारत में टिकना मुश्किल ही होगा।

आज जबकि पूरे भारत की चुनावी राजनीति में जाति पूरी तरह छायी हुई है तो उसपर कोई अलग समझ विकसित करनी ही पड़ेगी। ये सब अब दीख भी रहा है। जाति-प्रश्न पर मार्क्सवादी धाराओं में जो लगातार नए-२ विचार एप्रोच और भरपूर अकादमिक प्रकाशन अभी आ रहे हैं सो इतना साबित करने के लिए काफ़ी हैं कि जाति संबंधी जटिलताओं की धमक उनके यहाँ देर से ही सही लेकिन पहुँच गई। है 'आइडेंटिटी' यानी पहचान-अस्मिता के सवालों पर मार्क्सवाद बहुत असहज रहा है। उसके अनुसार ये सब कामगार की 'श्रम-चेतना' को कुन्द करने के झंझट हैं। लेकिन वो सब लगातार तीख़े से तीख़ा होता ही गया। 'अस्मिता' बहुत ताकतवर तत्त्व है और वो हमारा इतनी आसानी से पीछा छोड़ने वाला नहीं।

आज से क़रीब नब्बे साल पहले हिन्दू पंच नामक पत्र का 'बलिदान अंक' छपा था। इस अंक में शिवि दधीचि से आरम्भ करके जटायु-सीता और फ़िर महाराणा प्रताप - शिवाजी सरीखे न जाने कितने ही बलिदानी वीरों का ज़िक्र हुआ। और इसी कड़ी में इन सबके साथ एक आलेख छपा - साम्यवाद के प्रवर्तक महर्षि कार्ल मार्क्स ! दिलचस्प है कि इस लम्बे आलेख के अंत में मार्क्स को 'योगियों और ऋषियों' में सर्वश्रेष्ठ कहा गया। फिर आगे लेनिन को 'बोल्शेविक आचार्य महात्मा लेनिन' कहा गया। खैर , इस पर बहुत कुछ कहा जा सकता है लेकिन फिलहाल इतना ही संकेत काफी होगा कि भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान धार्मिक लोगों के बीच भी इनकी क्या प्रतिष्ठा रही। दुखद ही है कि मार्क्स के मानवता-दर्शन को नितान्त 'धर्मद्रोही' के रूप में चित्रित किया गया। इसमें कुछ न कुछ योगदान तो मार्क्सवादियों का भी है जिन्होंने मार्क्सवाद के 'ध्वंसात्मक' पक्ष को ही तरजीह दी। क्या आचार्य नरेंद्र देव जैसे मार्क्सवादी उसी वक़्त पर 'बौद्ध धर्म दर्शन' नहीं लिख रहे थे। राहुल सांकृत्यायन बौद्ध ग्रंथों और मार्क्सवाद पर समानांतर कार्य कर रहे थे। किसान नेता स्वामी सहजानन्द सरस्वती गीता के सहारे मार्क्सवाद को नए सिरे से समझाने में यत्न में लगे।

जर्मनी में फ़्रैंकफर्ट स्कूल से जुड़े मार्क्सवादियों ने हमारी चेतना और अंतर्मन की गहराईयों को मार्क्सवाद के साथ जोड़ दिया। वाल्टर बेंजामिन का मार्क्सवाद और धर्म-संस्कृति चेतना पर एक साथ काम एक मिसाल रहा। कितने उदाहरण गिनाएं !

मोटी बात ये है कि क्या हम हर सिद्धांत को स्थूल बनाकर छोड़ देना चाहते हैं या उसका सूक्ष्म विस्तार भी चाहते हैं। अगर हम पुराने निष्कर्षों को दोहराना भर चाहें तो कौन रोक सकता है। लेकिन पुराने निष्कर्षों को दोहरा भर देना 'विज्ञान' तो नहीं कहलाता न! अगर कोई मार्क्स और उनके काम को महज़ 'आर्थिकता' तक महदूद कर देना चाहे तो उसे क्या कहा जाए ! मार्क्स की विचारधारा एकमात्र दरवाज़ा नहीं है जहाँ से हम वर्तमान संकट से बाहर निकलेंगे। लेकिन इसको नज़रअंदाज़ करके वैचारिक दरिद्रता ही हाथ लगेगी।

संपर्क- 9729482329

समाजवाद की स्थापना चाहते थे शहीद भगत सिंह

□ राजविन्द्र सिंह चन्दी

आल इंडिया लार्यर्स यूनियन जिला कांऊसिल कुरुक्षेत्र ने शहीद-ए-आजम भगत सिंह जयंती के उपलक्ष्य में 27 सितम्बर 2018 को बार रूम जिला न्यायालय कुरुक्षेत्र में शहीद-ए-आजम भगत सिंह के जीवन इतिहास (जीवन वृत) प्रदर्शनी का आयोजन किया। इस प्रदर्शनी में भगत सिंह के बचपन से फांसी देने तक की घटनाओं, जिनमें उनके परिवार की फोटो, लौहार षड्यंत्र केस से संबंधित दस्तावेजों, अखबारों, क्रांतिकारियों की फोटो, जलियांवाला बाग कांड से जुड़ी जानकारियों, काकोरी कांड से जुड़े शहीदों और भगत सिंह के विचारों को दर्शाया गया।

इस प्रदर्शनी में भगत सिंह के भतीजे श्री अभय सिंह संधू बतौर मुख्य अतिथि, सुश्री शालिनी सिंह नागपाल जिला एवं सत्र न्यायधीश, सुश्री गुरविन्द्र कौर अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायधीश श्री हितेश गर्ग सी.जे.एम. (डी.एल.एस.ए.) सुश्री तजेन्द्र कौर सन्धू पुत्रवधु भगत सिंह ने बतौर विशिष्ट अतिथिगण

हिस्सा लिया। प्रदर्शनी का उद्घाटन मुख्य अतिथि श्री संधू ने किया, जिसको सैंकड़ों की संख्या में शाम छः बजे तक वकीलों, क्लर्कों आदि ने देखा। प्रदर्शनी को सभी द्वारा सराहा गया और भविष्य में भी शहीदों से जुड़े कार्यक्रमों को करते रहने का आग्रह किया गया।

प्रदर्शनी के मौके पर आयोजित सभा को संबोधित करते हुए श्री संधू ने कहा कि भगत सिंह छूआछूत व सम्प्रदायिकता के घोर विरोधी थे। उन्होंने इन दोनों समस्याओं पर लेख भी लिखे। वो रूसी क्रांति से प्रभावित थे और भारत में समाजवाद की स्थापना करना चाहते थे। वह शोषण मुक्त समाज की स्थापना के लिए प्रतिबद्ध थे। उन्होंने अन्य क्रांतिकारियों के साथ मिलकर नौजवान सभा की स्थापना की और हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन पार्टी में 'समाजवाद' शब्द जोड़ा। उन्होंने किरती, प्रताप, वीर अर्जुन आदि पत्रिकाओं व समाचार पत्रों में मैं नास्तिक क्यों हूं, बम का दर्शन, युवक, विश्व प्रेम लेख लिखे। लेकिन शहीद-ए-आजम का खिताब भगत सिंह को लोगों द्वारा दिया गया। सरकार द्वारा उनके विचारों पर चलना तो दूर आज तक शहीद का दर्जा भी नहीं दिया। भगत सिंह के विचार आज ओर ज्यादा प्रासंगिक हो गये हैं।

सभा का संचालन जिला सचिव राजविन्द्र चन्दी व सभा की अध्यक्षता श्री गुरदेव सिंह ने की। सभा को राज्याध्यक्ष श्री गुरमेज सिंह ने भी संबोधित किया। सभा में दीपक मेहता, रवि शर्मा, सोहन लाल सांगवान, चन्द्रजीत सैनी, योगेश करणवाल, पूर्व मैजिस्ट्रेट श्री मेहर सिंह मलिक, डा. ए.एन. मनोचा, श्री श्याम लाल जांगड़ा, वरिष्ठ वकील साहब सिंह सैनी व पूर्व विधायक थानेसर, स्वागत समिति के सदस्य जरनैल रंगा, सोहन लाल प्रतापगढ़, पूर्व सचिव बार एसोसिएशन सन्दीप मदान, पूर्व सह-सचिव रेखा देवी, निवर्तमान सचिव धर्मेंद्र नरभान व उपप्रधान जसविन्द्र पाल सिंह के अलावा 300 के लगभग वकीलों, देस हरियाणा पत्रिका के सम्पादक डा. सुभाष चन्द्र, ओ.पी.ग्रेवाल संस्थान के उपप्रधान डा. ओम प्रकाश, सामाजिक कार्यकर्ताओं निशि गुप्ता, लखविन्द्र ग्रेवाल, संतोष दहिया आदि ने हिस्सा लिया।

इस मौके पर एस.एफ.आई. के कार्यकर्ताओं ने 'शिक्षा मण्डी' नाटक का मंचन किया, जन नाट्य मंच के कलाकारों ने क्रांतिकारी गीत गाए व ज्योतिसर के प्रसिद्ध गायक श्री गोगा ज्योतिसर ने भी देश भक्ति गीत गाए। दिशा सांस्कृतिक मंच ने प्रगतिशील साहित्य का स्टाल लगाया। वकीलों ने भगत सिंह से जुड़ी किताबों को इस अवसर पर खरीदा।

संपर्क - 94162-71188

देस हरियाणा काव्य-गोष्ठी का आयोजन

राजकीय कन्या वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, इंद्री के प्रांगण में 28 अक्तूबर 2018 को सृजन मंच इन्द्री के तत्वावधान में देस हरियाणा काव्य-गोष्ठी का आयोजन किया गया। गोष्ठी में क्षेत्र के कवियों ने अपनी रचनाओं में पर्यावरण सरंक्षण, मानवता, समाज सुधार एवं हरियाणा की संस्कृति सहित विभिन्न विषयों पर अपनी रचनाएं प्रस्तुत की। गोष्ठी की अध्यक्षता कवि मुकेश खंडवाल ने की और संयोजन कवि नरेश मीत व दयाल चंद जास्ट ने किया। कव्य गोष्ठी का संचालन अरुण कुमार कैहरबा ने किया।

वरिष्ठ कवि दयाल चंद जास्ट ने कव्य गोष्ठी की शुरुआत करते हुए अपनी कविता में कुछ यूं कहा-

दिवारों पर लिखे संदेश गलियों से गंद कब उठाते हैं,
अखबारों में छपे हुए लेख दिलों से नफरत कब मिटाते हैं।

नरेश कुमार मीत ने गहरे अहसास की अपनी गजल पढ़ते हुए कहा-

महक महक सा अपना घर लगता है,
बेवक्त की बहार से डर लगता है।
तुम्हीं कहो कैसे फूलों पर करूं ऐतबार,
खुश्बुओं में घुला हुआ जहर लगता है।

कवि अरुण कैहरबा ने जातीय संकीर्णताओं पर तंज कसते हुए अपनी हरियाणवी रचना में कहा -

जात-पात बिन बात करैं ना ऐसे झंडेबाज होये,
ऊंच-नीच नै इब भी मान्नैं, ऐसे हम आजाद होये।

कवि रोशनदीन नंदी ने अपनी कविता में मोबाइल क गुण-दोष का चित्र उकरते हुए कहा

सांईस और तरक्की के युग में अपनी पहचान बनाई मोबाइल ने,
चारों तरफ खुशी और गम की लहर दिखाई मोबाइल ने।

कवयित्री अंजली तुसंग ने कहा

लड़ना है गर तुम्हें तो न्याय के लिए लड़ो,
कायरों की तरह फालतू पंगे में ना पड़ो।

गोष्ठी के अध्यक्ष मुकेश खंडवाल ने अपनी कामनाओं को कविता में कुछ यूं पिरोया -

मैं पढूं कई कलाम और सुने सारी अवाम तो क्या बात हो,

सलिन्द्र अभिलाषी ने कविता की ताकत को ऐसे बयां किया-

लड़ने को इस जीवन से हथियार कविता है अपनी,
करने को कुछ कर यहां औजार कविता है अपनी।

कवि देवीशरण ने कहा

अविवेक की तंद्रा त्याग, सूने जग को हर्षाना है,
इस धरा को स्वर्ग बनाना है।

रिपोर्ट—अरुण कैहरबा

सनक में तब्दील होती सेल्फी और वीडियो बनाने की भेड़चाल

□ अनिल पाण्डेय

(लेखक माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय से प्रसारण पत्रकारिता में स्नातकोत्तर हैं। लेखक पूर्व में प्रतिष्ठित माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवम् संचार विश्वविद्यालय के मीडिया प्रबंधन विभाग सहित इलेक्ट्रानिक मीडिया विभाग में बतौर सहायक प्राध्यापक (अतिथि) अध्यापन कार्य कर चुके हैं। लेखक संप्रति कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से संबद्ध राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सेक्टर-1, पंचकूला, हरियाणा में बतौर सहायक प्राध्यापक अध्यापनरत हैं। अध्ययन - अध्यापन के साथ ही लेखक पत्रकारीय लेखन में भी सक्रिय हैं -सं।)

इंटरनेट आधारित मीडिया के असीमित विस्तार से मानवीय संचार को असीमित विस्तार मिला है। सोशल मीडिया ने वर्तमान में मुख्यधारा के मीडिया जितनी जगह बना ली है। हाल तो ये है कि जो भी कुछ हम सोशल मीडिया में देखते हैं, वही सब देर–सबेर समाचार के रूप में टेलीविजन, रेडियो और समाचार-पत्र पत्रिकाओं में देखने, सुनने और पढ़ने को मिलता है। सोशल मीडिया को इसके लोकतांत्रिक स्वरूप ने ही लोगों में खूब लोकप्रिय बनाया है। सोशल मीडिया के बढ़ते इस्तेमाल के कारण ही स्मार्ट फोन का बाजार निरंतर बढ़ रहा है।

स्मार्ट फोन टेलीफोनिक वार्तालाप के अलावा रोजमर्रा के कई जरूरी काम निपटाने में मददगार होने के साथ ही यह हम सब की जिंदगी का अहम हिस्सा बन चुका है। मार्केट रिसर्च कंपनी ईमार्केटर के अनुसार इस वर्ष के अंत तक भारत में स्मार्टफोन का इस्तेमाल करने वालों की संख्या तकरीबन 33.7 करोड़ हो जाएगी जो कि देश की एक चौथाई आबादी से ज्यादा होगी। ईमार्केटर के आकंडों के अनुसार देश में स्मार्टफोन उपभोक्ताओं की संख्या में प्रतिवर्ष 3.1 करोड़ का इजाफा हो रहा है। ईमार्केटर के वरिष्ठ विश्लेषक क्रिस बेंडट्सेन तो यहां तक कहते हैं कि जिस गति से भारत में स्मार्टफोन यूजर्स बढ़ रहे हैं और ग्रामीण क्षेत्रों में इसकी पहुंच बढ़ रही है उससे उम्मीद है कि अगले चार साल में यहां स्मार्टफोन का इस्तेमाल करने वालों की तादाद करीब 50 करोड़ हो जाएगी।

स्मार्ट फोन उपभोक्ताओं की बढ़ती संख्या के साथ ही दुनिया भर में सेल्फी की वजह से होने वाली मौतों के मामले में भी भारत की पहचान तेजी से बनी है। सेल्फी की वजह से होने वाली मौतों के मामले में भारत दुनिया भर में अव्वल है। अमेरीकी नेशनल लैबोरेट्री ऑफ मेडीसिन द्वारा किये गए एक शोध अध्ययन में सामने आया है कि भारत में अक्तूबर 2011 से नबंबर 2017 तक सेल्फी की वजह से 159 लोग काल के गाल में समा चुके हैं, इनमें से 100 मौतें तो पिछले वर्ष ही घटित हुई हैं। वहीं इसी समय में सेल्फी के कारण पूरे विश्व में मरने वालों की संख्या 259 थी। इन्द्रप्रस्थ इंस्टीट्यूट ऑफ इंफोर्मेशन टेक्नालाजी, दिल्ली तथा अमेरिका की कर्नजी मेलन यूनिवर्सिटी के द्वारा संपन्न एक शोध अध्ययन से भी यह स्पष्ट हुआ है कि सेल्फी लेने के दौरान सबसे ज्यादा मौतें भारत में होती हैं। वर्ष 2014 से लेकर 2018 के बीच विश्वभर में सेल्फी के कारण कुल 213 मौते हुई, जिनमें से 128 मौते सिर्फ भारत में हुई हैं। उपरोक्त आंकडों से इस बात का अंदाजा बखूबी लगाया जा सकता है कि भारत में सेल्फी और लापरवाही पूर्व वीडियो बनाना, किस कदर एक महामारी के तरह फैल चुका है। मोबाइल फोन का गैरजिम्मेदारीपूर्ण इस्तेमाल, सड़कों सहित रेलवे ट्रैक तथा खतरनाक जोखिम भरे स्थानों पर सेल्फी लेने का नया ट्रेंड ही युवाओं के असमय काल कलवित करने के लिए जिम्मेदार है। आये दिन होने वाली सड़क दुर्घटनाओं के प्रमुख कारणों में से एक मोबाइल फोन का गैरजिम्मेदारीपूर्ण इस्तेमाल है।

युवाओं द्वारा सबसे अलग अलहदा किस्म की सेल्फी की चाह तथा एक्सक्लूसिव वीडियो बनाने की ललक ने ही

स्मार्ट फोन को मौत का सौदागर बना दिया है। कुछ ऐसा ही रोंगटे खड़ा कर देने वाला हादसा दशहरे के दिन अमृतसर शहर के बीचोंबीच स्थित जौड़ा फाटक इलाके में अमृतसर-दिल्ली रेलवे ट्रैक पर हुई रेल दुर्घटना का है। जिसमें लोग रेलवे ट्रैक पर खड़े होकर रावण दहन के दृश्य को अपने-अपने मोबाइल फोन में कैद कर रहे थे, तो कुछ रावण का पाठ करने के बाद ट्रैक पर आए कलाकार के साथ बेफिक्री से सेल्फी लेने के साथ ही वीडियो बना रहे थे। ट्रैक पर खड़े लोग संभवत: इस बात से अंजान और बेखबर थे कि वे सभी अपने जीवन की आखिरी सेल्फी और अपने मृत्यु का ही लाइव वीडियो बनाने जा रहे हैं। कुछ ही पल में तेज रफ्तार ट्रेन लोगों को कुचलते हुए मौत की ट्रेन साबित हुई और देश दुनिया ने देखा कि रेलवे ट्रैक पर खड़े होकर सेल्फी लेते और वीडियो बनाते लोगों का क्या हश्र हुआ।

हृदयविदारक इस घटना में जहां 62 लोगों की दर्दनाक मौत हो गई वहीं सैकड़ों घायल हैं। चश्मदीदों के अनुसार हादसे से पहले जौड़ा फाटक से अन्य तीन ट्रेंने भी गुजरी, तब लोग ट्रैक से हट गए। इसके बाद जब रावण जल रहा था, तब डीएमयू ट्रेन गुजरी। लोग पटाखों की धमक, वीडियो बनाने और सेल्फी लेने की जानलेवा सनक के चलते ट्रेन का हार्न नहीं सुन पाए और उन्हें बचने का मौका ही नहीं मिला।

रेलवे ट्रैक पर पर सेल्फी लेने की कोशिश में वैसे तो कई युवाओं की जान जा चुकी है लेकिन रेलवे के इतिहास में ऐसा भीषण हादसा पहले कभी नहीं हुआ। रेलवे फाटक पर सेल्फी लेने की कोशिश में ही कार्तिक नाम के छात्र की हरिद्वार-अजमेर एक्सप्रेस की चपेट में आने से मौत हो गई थी। यही नहीं, कुछ दिनों पहले ही हैदराबाद में एक युवक की रेलगाड़ी के साथ वीडियो बनाने की कोशिश के कारण उसकी जान पर बन आयी थी। वीडियो बनाने के दौरान रेलगाड़ी ने उसे टक्कर मार दी जिससे वह गंभीर रूप से घायल हो गया था। सेल्फी लेने के दौरान लापरवाही के कारण होने वाली देश भर में होने वाली मौतों की लंबी फेरहिस्त है। आज भी वह वीडियो आंखों के सामने कौंध जाता है, जब नागपुर में फेसबुक लाइव के दौरान नाव के डूबने 8 लोग मौत के मुंह में समां गए थे। बीते दिनों ऐसा ही मामला उत्तरप्रदेश में भी देखने को मिला था। जब लखनऊ से सटे बाराबंकी जिले में सेल्फी के शौक में एक ही परिवार के 8 लोगों की डूबने से मौत हो गई थी।

अमृतसर की घटना जहां प्रशासन की घोर लापरवाही हैं, वहीं ट्रैक पर जानबूझकर जान जोखिम में डालकर खड़े लोगों की घनघोर लापरवाही है। निश्चित तौर पर रावण दहन स्थल जब रेल ट्रैक के करीब हो तो प्रशासनिक जिम्मेदारियां ज्यादा बढ़ जाती है। लेकिन दहन स्थल ट्रैक के नजदीक होने के बाद भी प्रशासन, पुलिस और दशहरा समिति की ओर से सुरक्षा के कोई पुख़्ता प्रबंध नहीं किए गए थे। ट्रैक पर अविवेकी लोग देखा-देखी में एक के बाद एक भीड़ की शक्ल में खड़े होते गए बावजूद इसके उन्हें ट्रैक से हटाने के लिए कोई तैयारी नहीं की गई थी। अमर्यादित आचरण चाहे व्यक्तिगत हो या सामूहिक हमेशा ही दुखदायी होता है। निश्चित रूप से रेलवे ट्रैक पर एकत्रित लोग उन्मादी भीड़ की शक्ल में नहीं थे। लेकिन यह सत्य है की भीड़ की प्रकृति अस्थाई और अंसगठित होने के साथ ही व्यक्तिगत बुद्धि का लोप करने वाली होती है। यह केवल इशारों और सलाह के प्रति संवेदनशील होती है। भीड़ हमेशा सनक की शिकार होती है।

अमृतसर की इस भीषण और भयावह रेल दुर्घटना से न केवल प्रशासनिक अमले बल्कि स्मार्टफोन का उपयोग करने वाले हर व्यक्ति को इस बात का संकल्प लेना चाहिए कि सेल्फी लेने और वीडियो बनाने के दौरान उसकी खुद की सुरक्षा उसकी पहली प्राथमिकता होगी। सेल्फी लेना वैसे तो काफी मजेदार होता है, मगर कभी-कभी यह जानलेवा भी साबित हो जाता है। सेल्फी लेने की सनक में अक्सर लोग मौत को गले लगा लेते हैं। देश में हाल ही में घटी कई घटनाएं इसके जीवंत प्रमाण हैं। इस मामले में सरकारों द्वारा उठाये कदम तब तक सफल नहीं हो सकते जब तक हम सभी इन हादसों से सबक लेकर सचेत न हो जाएं। हम सभी को आत्मघाती एक्सक्लूसिव सेल्फी की सनक से बचना होगा, साथ ही इस बात को भी समझना होगा कि इंटरनेट अब हर किसी की मुट्ठी में है। फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम, व्हाट्सअप सहित सभी वेबसाइटों की मोबाइल फोन पर सहज ही उपलब्धता के चलते तकरीबन हर कार्यक्रम, घटना के वीडियो अब हर किसी की पंहुच में हैं। हम आप नहीं वीडियो नहीं बनायेंगे तभी ये हम तक पहुंच जाएंगे। वीडियो बनाये और खूब सेल्फी भी लें, लेकिन अपने दिल-दिमाग में वीडियो बनाने और सेल्फी लेने की सनक को इस कदर न हावी होने दे कि इस बात का भी ख्याल भी न रहे कि जिस रेलवे ट्रैक पर खड़े हैं, वहां से कभी भी कोई ट्रेन फर्राटा भरती हुई गुजर सकती है।

संपर्क - 8319462007

अमूल्य धरोहर है सांस्कृतिक मेवात

□ सिद्दीक अहमद 'मेव'

(सिद्दीक अहमद मेव पेशे से इंजीनियर हैं, हरियाणा सरकार में कार्यरत हैं। मेवाती समाज, साहित्य, संस्कृति के इतिहासकार हैं। इनकी मेवात पर कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। मेवाती लोक साहित्य और संस्कृति के अनछुए पहलुओं पर शोधपरक लेखन में निरंतर सक्रिय हैं। मेवाती संस्कृति के विभिन्न पहलुओं को उद्घाटित करता उनका लेख यहां प्रस्तुत है - सं)

संस्कृति किसी भी समाज, जाति अथवा क्षेत्र का आईना होती है । लोगों का रहन-सहन, खान-पान, आचार-विचार, रीति-रिवाज, वेषभूषा, खेल-कूद, मनोरंजन के साधन, पर्व और उत्सव, लोक कला एवं लोक साहित्य आदि सब मिलकर संस्कृतियों को समृद्ध और सम्पन्न बनाते हैं । इसलिए कहा जा सकता है कि केवल कला कौशल, शिल्प, हवेलियाँ, महल, मंदिर, मसजिद और गढ़ एवं किले ही नहीं, झौंपिडयाँ भी संस्कृति के दर्पण होते हैं । संक्षेप में कहें तो मनुष्य को जो चीज मुनष्य बनाती है, वह संस्कृति है । संस्कृति से कटकर कौमें दिशाहीन हो जाया करती हैं।

भारत एक विशाल देश है। क्षेत्रफल के लिहाज से ही नहीं, संस्कृति के लिहाज से भी। इस देश में जिस तरह से सामाजिक, धार्मिक, सामुदायिक, भौगौलिक और भाषायी विभिन्निताएं हैं, उसी प्रकार सांस्कृतिक विभिन्नताएं भी हैं। राजस्थानी संस्कृति, गुजराती संस्कृति, तमिल संस्कृति इत्यादि । फिर संस्कृतियों के अन्दर भी संस्कृतियां है, जैसे राजस्थानी संस्कृति के अन्दर मेवाड़ी मारवाडी और मेवाती आदि । मगर ये छोटी-छोटी लोक संस्कृतियाँ ही मिलकर एक समृद्व, सम्पन्न और सम्पूर्ण भारतीय, संस्कृति का निर्माण करती हैं और जिस तरह सामाजिक, धार्मिक, सामुदायिक, भौगोलिक और भाषायी विभिन्नताओं के बावजूद सम्पूर्ण भारत एक है, उसी तरह अनेक संस्कृतियों के बावजूद सांस्कृतिक भारत भी एक है ।

भारतीय संस्कृति ने इतिहास के अनेक उतार-चढाव देखे हैं । द्रविड, आर्य, हूण, कुषाण , यूनानी अरब, पठान, तुर्क, मुगल और अंग्रेज सब आये और चले गये। मगर ये सभी अपनी भाषा, अपनी संस्कृति, अपनी वेशभूषा और अपनी परम्पराएं भी साथ लाये थे कुछ हमने इनको दिया और कुछ हमने इनसे लिया, इस प्रकार विभिन्न संस्कृतियां के आदान-प्रदान से जिस भारतीय संस्कृति का निर्माण हुआ, वह 'गंगा जमनी' भारतीय संस्कृति आज सम्पूर्ण विश्व में विभिन्नताओं में एकता की एक ऐसी मिसाल है , यहाँ ऐवज शायर व भजन लिखता है तो सुगन चन्द मुकतेश पैगम्बर मुहम्मद पर महाकाव्य। हिन्दू सांगी मेव मुसलमानों का मनोरंजन करते हैं, तो मेव (मुस्लिम) कलाकार रामलीलाओं के मंचन को सफल बनाते हैं ।

मेवाती संस्कृति भी उन हजारों लोक संस्कृतियों मे से एक है जो मिलकर भारतीय संस्कृति का निर्माण करती हैं । यह भी ऐसी ही एक संस्कृति है जो कई धार्मिक, सामाजिक, सामुदायिक, भौगोलिक एवं भाषायी (बोली) विभिन्नताओं के बावजूद 'मेवाती संस्कृति' कहलाती है, जो इतिहास के अनेक उतार-चढ़ाव देखने के पश्चात् भी पूरे वैभव और शान के साथ अपने अतीत की मजबूत बुनियादों पर खड़ी है ।

वास्तव में किसी विशेष क्षेत्र में रहने वाले लोगों का एक जैसा रहन-सहन, आचार-विचार, सामाजिक जीवन, वेषभूषा एवं भाषा-बोली एक या कुछ ही दिन में विकासित नहीं हो जाते, बल्कि यह सदियों की सतत् प्रक्रिया है, जिसमें रंग, नस्ल, जाति एवं सम्प्रदाय का कोई भेद-भाव नही होता। 'मेवाती संस्कृति इसका एक जीवन्त उदारहण है, जहाँ न केवल विभिन्न सम्प्रदायों के लोगों के बीच अटूट सामाजिक सम्बन्ध हैं, बल्कि उनका लोक साहित्य भी हिन्दू एवं मुस्लिम 'मिथ' का सूबसूरत संगम है। सादल्लाह, ऐजव, नबी खाँ, खक्के एवं सूरजमल ने जहाँ होली और भजन लिखे हैं, वही राजु सहजो व कोक आदि हिन्दू शायरों ने जहाँ तैंतीस कोटि देवताओं का बखान किया है, वहीं हिन्दू शायर भी पैगम्बर और ख्वाजा अजमेरी को शीश नवाते नजर आते हैं। एक ही दोहे में पाण्डव, राम, हनुमान, अली और अल्लाह का वर्णन मेवाती शायरी का ही कमाल है । बुराई का प्रतीक 'रावण' और अच्छाई की मिसाल 'राम' को मेव शायरों ने मुस्लिम मिथ को अपनी शायरी का केन्द्र बिन्दू बनाया है। मुस्लिम (मेव) शायरों ने भी इसी तरह अपनी शायरी का 'केन्द्र' बनाया है, जिस तरह किसी भारतीय शायर को बनाना चाहिए !

राम चन्द्र बण में फिरो, पाँचू पण्डू फिरा परदेस!
हरीश्चन्द्र बिकतो फिरो , नरन पे बिपदा पड़ी हमेश !!
पर नारी पैनी छुरी तीन ठौर सू खाय !
धन लूटे, जौबन हड़े , लाज कुटम की जाय !!

मेवात का 'बात साहित्य' हमारी मिश्रित संस्कृति की अटूट पहचान है। 'गौरा का छल (शिव महिमा), चन्द्रावल गूजरी (कृष्ण लाली) और 'राजा बासुक की बात जहाँ हिन्दू मिथक पर रची गई कथाएं हैं वही 'जैतून जौधिया', 'हाजी कासम की बात' और 'हजरत अली की बात' मुस्लिम मिथ का आईना हैं। मगर इन बातों (कथाओं) को कहने और सुनने वाले, हिन्दू या मुसलमान नहीं बल्कि बिना किसी भेद-भाव के 'मेवाती' है। महाकवि सादल्लाह द्वारा रचित 'पण्डून का कडा' (मेवाती महाभारत) तो मेवातियों विशेषकर मेव मुसलमानों के सामाजिक अत्सवों (शादी -विवाह अकीका आदि) का अटूट अंग है। महाकवि सादल्लाह की यह कालजयी रचना सैंकडों सालों से आम मेवाती के दिल-ओ-दिमाग पर आज भी रची-बसी हुई है।

सम्पूर्ण मेव (मुस्लिम) समाज बारह पालों व एक पल्लाकड़ा तथा 52 गोतों में बटा हुआ है। विशेष बात यह है कि बारह में पाँच पाल जादू अर्थात यदुवंशी मानी जाती हैं, जो अपने को श्री कृष्ण के वंशज मानते हैं। चार पाल सूर्य वंशी मानी जाती हैं, जो अपने को पाण्डवों का वंशज मानते हैं। देंहगल पाल वाले अपने आपको रामचन्द्र का वंशज मानते हैं तो पाहट (पल्लाकड़ा) अपने को चौहान कहलाने पर गर्व करते हैं। सींगल पाल का सम्बन्ध बडगूजरों से है। ये ही नहीं डागर, रावत व सहरावत गोत्रीय जाटों की चौधराहटें क्रमशः देंहगल (घासेडियां) डेमरौत (अली मेव) व छिरकलौत (कोटिया) मेवों में है। उजीना व संगैल के छौक्कर राजपूतों का सम्बन्ध भी रूपड़िया छिरकलौंतों के साथ है। इसके अतिरिक्त मेवों के अट्ठाईस गोत, जैसे चौहान, पंवार, चालुक्य, तंवर , बड़गूजर, कटारिया आदि वही हैं, जो जाटों, राजपूतों एवं गूजरों में है। यही कारण है कि आज भी मेव अपने आपको 'क्षत्रीय' कहलाने पर गर्व करता है।

यह सही है कि आर्य समाज ने मेवात में रहने वाले जाटों, सैनियों, गूजरों, वैश्यों व अन्य हिन्दुओं को वैदिक शिक्षा का पाठ-पढाकर विशुद्ध हिन्दू संस्कृति से जोड़ने का प्रयास किया है और 'तबलीग आन्दोलन' ने मेवों को इस्लामी शिक्षा का पाठ पढाया है, मगर इतने लम्बे समय के अथक प्रयासों के बावजूद क्या वे उनका मेवातीपन परवर्तित कर पाये हैं? क्या वे उनके आचार-विचार, रहन-सहन, चरित्र, व्यवहार आदि को बदल पाये हैं ? शायद नहीं या फिर आंशिक रूप से ही।

मेवाती वेश भूषा अवश्य बदली है। घाघरी और चोली का स्थान पहले खूसनी-कमीज ने और अब पंजाबी सूट ने ले लिया है तो धोती-कमरी का स्थान तहमद-कमीज अथवा तहमद -कमीज अथवा कुर्ते ने। मगर बनाती जूती और मेवाती पगड़ी आज भी उसी शान व गौरव का प्रतीक मानी जाती हैं। कड़ा, नेवरी, छण, पछेली , हंसली, बिच्छू, हार, हमेल और पचमणिया आदि में से अनेक गहने गायब हो चुके हैं। मगर इसे धार्मिक नजरिये से न देख 'समय के साथ बदलाव' के नजरिये से देखा जाना शायद ज्यादा उचित होगा।

शादी व अकीकी आदि पर चाक व कुआँ पूजन , भात, मांडा आदि रस्में आज भी यदि जारी हैं तो यह मेवाती मिश्रित संस्कृति की मजबूत विरासत का ही परिणाम है।

इसी तरह हल-बैलों से खेती तबलीग से पहले भी होती थी और तबलीग के बाद भी। हाली और गढवाला (गाडीवान) तबलीग से पहले भी बिरहड़ा रतवाई और रसिया गाते थे और बाद में भी, मगर ट्रैक्टर आया। हल-बैल , गाड़ी समाप्त हो गये, साथ ही बिरहड़ा रतवाई और रसिया गाने वाले हाली और गड़वाले भी। यही हाल रथ-बहली और उनके गड़वालों का भी हुआ। यही नहीं ट्रेक्टर व थ्रेशर आये तो खलिहान (पेर) समाप्त हो गये। इनके साथ ही समाप्त हो गई बैशाख व जेठ की लम्बी रातों में बात कहने की परम्परा!

मगर सबसे बड़ी हानि हुई टेलीविजन के आने से। टी.वी. आ गया तो माँ, दादी या नानी से बात सुनने की परम्परा भी समाप्त हो गई। बच्चों द्वारा 'फाली आडने' का समय उनके पास कहाँ रहा। टी.वी. ने ही ग्रामीण क्षेत्रों में क्रिकेट को लोकप्रिय किया, जो हमारे सारे ग्रामीण खेंलो को निगल गई। कुश्ती-कबड्डी ही नहीं हुद्दा-गींद, गंगू-बल्ला, नूणा-शिकारी, किलाई-डंडा हाबड़ दूस आदि सब टी.वी. व क्रिकेट पर कुर्बान हो गये। अब शादी-विवाह और अकीका आदि के अवसर पर मीरासी या ढोला नही सुना जाता बल्कि टी.वी. लाकर रख दिया जाता है। यदि पुरानी पीढी के लोग 'पन्डून का कड़ा' अथवा कोई बात सुनना चाहें तो फिर पुरानी पीढी अलग और नई पीढ़ी अलग। कैसी विंडबना है कि हमारी नई पीढ़ी 'पंजाबी पोप' तो सुनना पसंद करती है जो उसकी समझ में भी नही आता, मगर अपने दोहों, गानों आदि को वह अनपढों, जाहिलों एवं पिछड़े लोगों की विरासत समझती है। हमारी नई पीढ़ी की यह सोच दुर्भाग्यशाली ही नहीं बल्कि एक गंभीर चूक भी है। अपनी संस्कृति, अपने लोक साहित्य, अपनी भाषा और अपनी परम्पराओं से कटकर, भला कोई कैसे अपनी पहचान कायम रख सकता है। अपने अतीत से कटकर क्या हम अपने भविष्य को संवार पायेंगे? यह अत्यन्त महत्वपूर्ण सवाल है जिसे प्रत्येक

समझदार मेवाती आज अपने आपसे पूछ रहा है।

हमारा अतीत ही तो हमारा इतिहास है और यही इतिहास हमारी विरासत भी है और प्रेरणा भी। फिर पने अतीत से कटकर क्या हम अपनी पहचान कायम रख पायेंगे? कहना कठिन है। इसलिए जरूरी है कि हम अपनी विरासत अर्थात मेवाती संस्कृति एवं उसका विकास हमारी प्राथमिकता में हो, ताकि हमारी नई पीढ़ी दिशाहीन न हो।

सिक्के का एक पहलू और भी है जिसने हमारी लड़ाई के स्वरूप को ही बदल दिया है। वैश्वीकरण के बाद टेलीविजन और सिनेमा के माध्यम से पश्चिमी संस्कृति ने जिस तेजी के साथ हमारी संस्कृति पर हमला बोला है, उसने हमारी लोक संस्कृतियों को ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति के अस्तिव को ही खतरा पैदा कर दिया है जिसके कारण आज अपनी संस्कृति को बचाने रखने की लड़ाई पहले नम्बर पर आ गई है और इसके विकास का प्रयास दूसरे नम्बर पर चला गया है।

मगर अपनी संस्कृति की सुरक्षा, इसका संरक्षण एवं इसका विकास हमें करना होगा और यह हुनर हम बखूबी जानते भी हैं। गिर कर उठना और उठकर लड़ना हमारा स्वाभाविक गुण रहा है। प्रत्येक लड़ाई से सुर्खरू होकर निकलना हमारी परम्परा रही है और उस परम्परा का निर्वाह करना हम बखूबी जानते हैं।

मगर इसके लिए सबसे हमें अपनी सोच को सही दिशा देनी होगी। जिसके लिए जरूरी है कि सबसे पहले हम अपने आपको 'मेवाती' कहलाने पर गर्व महसूस करें। हमें इस बात पर गर्व हो कि हम मेवातियों का भी एक शानदार एवं गौरवपूर्ण इतिहास है। हमारी भी एक समृद्ध एवं सुन्दर संस्कृति है। हमारे भी अपने पर्व, त्यौहार, परम्पराएँ एवं रीति-रिवाज हैं। हमारा अपना लोक साहित्य है, हमारी अपनी लोक कलाएं हैं, लोक नृत्य हैं, लोक वार्ताएं हैं और लोक संगीत हैं। हमें न केवल अपने लोक साहित्य पर गर्व ही हो, बल्कि इसकी गहन जारकारी भी हो ताकि दूसरे लोगों की तरह अपने घरों व समाज में मेवाती भाषा, मेवाती परम्पराओं और मेवाती रीति-रिवाजों का स्वतन्त्रतापूर्वक निर्वाह कर सकें। हमें इस चीज का ज्ञान हो कि मेवाती भाषा एवं मेवाती लोक साहित्य किसी से भी कम नहीं है। भला जिस क्षेत्र में बात-बात पर कहावतों, मुहावरों, लोकोक्तियों, दोहों और छन्दों का प्रयोग होता हो, उस क्षेत्र की भाषा भला कैसे किसी से कम हो सकती है।

मगर पहले हम स्वयं अपनी भाषा, अपनी संस्कृति एवं अपने लोक साहित्य पर गर्व करें, तभी हम दूसरे लोगों को इसके महत्त्व को समझा पायेंगे। झूठे श्रेष्ठ बोध अथवा हीन भावना के कारण हम पहले ही मेवाती लोक साहित्य एवं संस्कृति को काफी हानि पहुँचा चुके हैं। हालात तो आज भी ऐसे हो गये है कि

तांत गई , तूंबी गई, टूट गया सब तार!
सुणन वाला ना रहा, बस रही बजावणहार !!

मेवात के इतिहास, संस्कृति एवं लोक साहित्य का योजनाबद्ध तरीके से संकलन, संरक्षण, सम्पादन और प्रकाशन किया जाय। इसके सथ ही मेवाती इतिहास, संस्कृति, लोक साहित्य, लोक कवियों एवं उनकी रचनाओं, और मेवात के इतिहास पुरुषों एवं उनके जीवन व कार्यों पर गहन तथा विस्तृत शोध हो, किताबें, लेख एवं निबन्ध लिखे जायें और उनका प्रकाशन हो, ताकि हमारी नई पीढी ही नहीं, पूरी दुनिया देख सके कि ज्ञान और चातुर्य का सूरज मेवात में भी चमकता है।

इस कार्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए जरूरी है कि 'मेवाती' इतिहास एवं संस्कृति अकादमी की स्थापना की जाय, जो राज्य एवं केन्द्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त हो ताकि इसके द्वारा प्रकाशित सामग्री की प्रमाणिकता पर किसी को कोई शंका न हो।

मगर बात फिर घूम-फिर कर वहीं आ जाती है कि यदि हम आगे बढ़ना चाहते है तो पहल भी हमें ही करनी पड़ेगी। अपनी संस्कृति एवं लोक साहित्य के सरंक्षण और विकास के लिए सबसे पहले हमें ही कदम उठाना होगा। अपने लोक साहित्य में नये प्रयोग तथा नई-नई रचनाएं कर, बदलते हुए समय के साथ तालमेल बिठाना पड़ेगा। क्योकि भाषा वही समृद्ध होती है जो दूसरी भाषाओं के शब्द अपने अन्दर समायोजित कर सके। इसी प्रकार संस्कृति भी वही समृद्ध होती है जो दूसरी संस्कृतियों के साथ समायोजन कर, विचारों, परम्पराओं एवं साहित्यिक रचनाओं का आदान-प्रदान कर सके। मेवाती संस्कृति एवं लोक साहित्य की विशेषता तथा गहराई से परिचित करवायें ताकि संस्कृति एवं साहित्य के आदान-प्रदान का सिलसिला शुरू किया जा सके। मेवात में तो प्रचलित भी है, चातर सू चातर मिले, ज्ञान सवायो होय।

वीर, श्रृंगार, विरह, भक्ति, प्रेम और उपदेशात्मक दोहों का अथाह भण्डार तथा मुहावरों, लोकोक्तियों, लोक वार्ताओं, लोक गीतों, पहेलियों एवं लोक कथाओं से भरपूर मेवाती लोक साहित्य तथा हिन्दू-मुस्लिम मिश्रित परम्पराओं वाली मेवाती संस्कृति यदि अब तक उपेक्षित रही है। मगर अब 'बीती ताहि बिसार कर' जो कुछ बचा है यदि उसे भी संभाल लिया जाये तो भारतीय लोक संस्कृति के एक समृद्ध एवं अमूल्य भाग को बचाया जा सकता है। हमें यह करना चाहिए और करना पड़ेगा क्योंकि मेवाती संस्कृति हमारी अमूल्य धरोहर है।

संपर्क: 9813800164

कृष्ण चन्द्र महादेविया की लघु कथाएं

(ग्रामीण विभाग के अधीक्षक पद से सेवानिवृत कृष्णचंद महादेविया हिमाचल प्रदेश के मंडी जिले के सुंदर नगर में रहते हैं। मूलतः लघुकथा व एंकाकी लेखक हैं और हिमाचल के लोक साहित्य के जानकार हैं -सं.)

जूठ

'ओए धर्मू, साले हरामी, अपनी नालायक औलाद संभाली नहीं जाती क्या?' अपने आंगन में खड़े-खड़े डमलू ठाकर भेड़िए की तरह गुर्राकर बोला।

'क्या हुआ ठाकर जी, ऐसे लाल-पीले क्यों हुए जाते हो?' धर्मू ने शांत भाव से किन्तु भेड़ की तरह मिमियाते से अपने पड़ोसी डमलू ठाकर से कहा।

थे तो दोनों पड़ोसी किन्तु दोनों के घर जाने के या बाहर जाने के रास्ते अलग-अलग थे। डमलू ठाकर को धर्मू के आंगन में आने का जन्मजात अधिकार था, जबकि धर्मू लोहार उसके आंगन को छू भी नहीं सकता था।

'तेरी नस्ल ने आम निकालने के लिए पेड़ पर पत्थर मारा और वह मेरे छप्पर को तोड़ता हुआ भीतर पहुंच गया है। तेरे लड़के के छुए पत्थर ने मेरे घर को जूठ लगा दी है। अब तो देवता नाराज हो जाएंगे। बस तूं झट से बकरा निकाल। देवता की बलि देकर ही जूठ से मुक्ति मिलेगी, समझ गया कि नहीं।' डमलू ठाकर ने दांत पीसते और उसे डराते स्वर में कहा।

धर्मू के लड़के के पत्थर से डमलू ठाकर के घर लगी जूठ की खबर पूरे गांव में आग की तरह झट फैल गई। आनन-फानन में गांव वालों की जात पंचायत बैठ गई। धर्मू लोहार ने पत्थर से घर जूठा और अपवित्र होने की बात नहीं मानी। जबकि डमलू ठाकर ने घर को जूठ लगने की बात कही और अपनी ऊंची जात होने का हवाला भी दिया। उसने देवता के लिए बकरा दिलाने की पंचायत से विनती की।

पंचायत का फैसला डमलू ठाकर के पक्ष में गया। अब तो धर्मू लोहार को बेटी की शादी के लिए रखे रुपए बकरा खरीदने के लिए देने ही पड़े।

देवता को बकरे की बलि देकर सब लोग डमलू ठाकर का घर पवित्र होना मान गए थे। किन्तु धर्मू का आठवीं में पढ़ने वाला वह लड़का पंचायत और डमलू ठाकर का सिर फोड़ने के लिए वजनदार पत्थर ढूंढने लगा था।

सरनेम

'मैं राज शर्मा, कनगढ़ से। यहां बैंक में कैशियर हूं।' राज शर्मा का स्वर गुड़ की चासनी में भीगा हुआ था।

'मैं आशीष वर्मा, टिक्कन से। सीनियर सैकेंडरी स्कूल में इकोनोमिक्स का लैक्चरर हूं।' सूखे ठूंठ की तरह स्वर को गीला बनाते आशीष वर्मा ने कहा।

'आप दोनों से मिलकर बहुत अच्छा लगा। मैं मुनीश, बैहलघाटी से। यहां, पीडब्ल्यूडी में सहायक अभियंता हूं।' अपनेपन से मुनीश ने सस्मित कहा था।

रामपुर बस स्टैंड के एक कोने पर खड़े दोनों बतियाने लगे थे। वे अक्सर शिमला से एक ही बस में आते थे और वैसे रहते भी एक ही कालोनी में थे। किंतु कभी आज की तरह वार्ता का आदान-प्रदान नहीं हुआ था।

'एक्सक्यूज मुनीष। युअर सरनेम प्लीज?' राज शर्मा ने एकाएक जब पूछा तो उसके चेहरे पर कोई झिझक और शालीनता नहीं थी।

'चौं ऽ ऽ चौधरी।' कलेजा मुंह को आने से रोकते मुनीश ने अप्रत्याशित से प्रश्न पर धीरे से कहा। ये पढ़े-लिखे ऐसा प्रश्न भी कर सकते थे, उसने सोचा तक न था।

'चौधरी तो यहां बस स्टैंड पर सामान ढोने वालों को कहा जाता है। चौधरी रेवेन्यू रिकॉर्डिड है क्या?' आशीष वर्मा ने संदेह से देखते हुए पूछा।

'नहीं, हमारे यहां सभी लिखते हैं तो...'

उसके चेहरे पर उमड़ते आत्महीनता के भाव पढ़ते बॉय कह कर वे सव्यंग्य मुस्कराते हुए एक ओर हो लिए। जबकि मुनीश, विधायकी पाने के लिए अपने स्वाभिमान और क्षत्रियत्व को बेचने वाले चौधरियों की करतूत पर वहीं जड़वत खड़े सोचता जाता था।

संपर्क - डाकघर-महादेव, सुंदरनगर, मण्डी (हि.प्र.),
फोन - 86791-56455

लोक देवता गुग्गा पीर का बदलता स्वरूप

□ सुरेंद्रपाल सिंह

(राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के कुछ इलाकों में गुग्गा पीर की विशेष मान्यता है। यह लोकनायक सांझी संस्कृति का विशिष्ट उदाहरण है। यहां हिंदू-मुस्लिम धर्म के लोग बराबर सहभागिता करते रहे हैं। गुग्गा का संबंध पौराणिक-शास्त्रीय कथाओं से नहीं, बल्कि ब्राह्मणी परंपराओं व मान्यताओं के चौखटे से बाहर हुआ है। लेकिन बदली परिस्थितियों इसका ब्राह्मणीकरण हो रहा है। इस संबंध में प्रस्तुत है सुरेंद्रपाल सिंह का शोधपूर्ण लेख।
सामाजिक कार्यकर्ता सुरेंद्र पाल सिंह बैंक में अधिकारी रहे। लोकधर्मी परंपराओं में विशेष रूचि रखते हैं। स्वैच्छिक सेवानिवृति के बाद विभिन्न संगठनों और मंचों के माध्यम से सामाजिक गतिविधियों में सक्रिय हैं। अपना पूरा समय सामाजिक कार्यों व लेखन में निवेश कर रहे हैं। देस हरियाणा पत्रिका के सलाहकार हैं - सं.)

राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के कुछ इलाकों में गुग्गा पीर एक लोकप्रिय लोकदेवता है जिसके नाम पर भाद्रपद की नवमी को लाखों नर नारी दूर दराज से राजस्थान के हनुमानगढ़ जिला में भादरा के नजदीक गुग्गा मैडी नामक स्थान पर मेले में आकर धोक मारते हैं। इसके अलावा इन इलाक़ों में करीब करीब प्रत्येक गाँव या शहर में एकाधिक गुग्गा मैडी पाई जाती है। उल्लेखनीय है कि अधिकतम गुग्गा मैडी की इमारतों के चारों कोनों पर एक एक मीनार बनी होती है जो मैडी को एक इस्लामिक स्टाइल का रूप देती हैं। मैडी के अंदर या तो मजार बनी होती है या घोड़े पर सवार हाथ में भाला उठाए हुए जाहर वीर गुग्गा की मूर्ति होती है।

गुग्गा में आस्था रखने वाले हिन्दू भी हैं और मुसलमान भी। सभी जातियों के लोग गुग्गा पीर में आस्था रखते हुए दिखाई दे जाएंगे। लेकिन सामाजिक रूप से निम्नतम स्तर की जातियों के कुछ सदस्य गुग्गा नवमी से कुछ समय पहले ही विशेष रूप से सक्रिय दिखाई देने लगते हैं। वे गुग्गा का निशान लेकर डेरू बजाते हुए एक खास अंदाज में झूमते हुए गुग्गा के जीवन से जुड़े भजन गाते हैं। उनमे से कुछ एक लोहे की सांकल से बने हुए एक गुच्छे से अपने ही शरीर पर ताजिये की माफिक जोर जोर से चोट मारते हैं लेकिन उन्हें दर्द का कोई एहसास नहीं होता। उन्हें समैये के नाम से जाना जाता है और वे गीत गाते हुए घर घर जाकर भिक्षा मांगते हैं। सभी घरों से उनको इत्मीनान से भिक्षा मिल जाती है। गुगा मैडी पर मत्था टेकने के बाद या गुग्गा के नाम रतजगा के दौरान कुछ एक भगतों में हिस्ट्रीया के दौरे की तरह शरीर में विशेष कम्पन, अबूझ सी विचित्र आवाजें, अकड़न जैसा कुछ घटता है जिसके बारे में यह कहा जाता है कि फलाने भगत में गुग्गा उतर आया है यानी उसमे गुग्गा की शक्ति सवार हो गई है।

किसी धार्मिक ग्रन्थ या शास्त्र में गुग्गा पीर का कोई ज़िक्र नही आता है और ना ही उसकी पूजा का शास्त्रीय विधान उपलब्ध है। फिर भी सदियों से जाहिर (हमेशा और हर जगह) के रूप में गुग्गा पीर लोकमानस का सतत हिस्सा रहा है। अवश्य ही लोकजीवन की इस सामाजिक-सांस्कृतिक-धार्मिक प्रक्रिया को समझने के लिए मानव मस्तिष्क की आदिम अन्तश्चेतना , सामाजिक-धार्मिक प्रतीकों, अचेतन मन की उड़ानों को और काल्पनिक अवधारणाओं को बूझ पाना समाजशास्त्रीय, मनोवाज्ञानिक अध्ययन की एक बड़ी चुनौती है।

गुग्गा पीर की मूल कहानी की ओर चला जाए। राजस्थान के हनुमानगढ़ जिले में ददरेवा के राजा जेवर को अपनी दोनों रानियों बाछल और काछल (सगी बहनें) से कोई संतान नहीं है। निराश होकर रानी बाछल नाथ जोगी गुरु गोरखनाथ के समक्ष पुत्र की कामना रखती है। गुरु गोरखनाथ एक सुबह उसे बुलाते हैं लेकिन इस बात का बाछल की छोटी बहन काछल को पता लगने पर वह बाछल जैसे वस्त्र पहन कर बाछल से पहले ही गोरखनाथ से जौ के दो दानें ले आती है। जब बाछल वहाँ पहुँचती है तो उसे निराशा ही हाथ लगती है क्योंकि गुरु गोरख नाथ तो अपना आशीर्वाद पहले ही दे चुके हैं। अनेक अनुनय विनय के बाद गुरु गोरख नाथ पाताल लोक से नागों के राजा वासुकी के जहर की जुगाली को गुगल के रूप में बाछल को देते

हैं। इस प्रकार अब दोनों बहनें गर्भवती हो जाती हैं। राजा जेवर की बहन सबीर दे को जब पूरी कहानी का पता लगता है तो वह रानी बाछल पर जोगी के साथ व्यभिचार का लांछन लगा कर उसे अपने पैतृक परिवार में भेजने का राजा जेवर से आदेश दिलवा देती है। रास्ते में एक सांप गर्भ में पल रहे गुग्गा को डसने का प्रयास करता है लेकिन असफल होने पर उनके बैलों की जोड़ी को डस लेता है और इस प्रकार दोनों बैल मर जाते हैं। अब गुग्गा अपनी चमत्कारिक शक्ति से दोनों बैलों को जीवित कर देता है और और अपनी गर्भवती माँ को वापस ददरेवा लौटने को कहता है। वापस आकर जब गुग्गा का जन्म होता है तो सारा महल अपने आप ही रोशन हो उठता है।

उधर काछल को अरजन और सरजन नाम के दो पुत्र होते हैं। जवान होने पर गुग्गा का रिश्ता कारू देश/ गोर बंगला/संगल द्वीप की राजकुमारी सीरियल से होता है लेकिन बाद में वहाँ का राजा इस रिश्ते को मानने से मना कर देता है। एक सांप राजकुमारी के अंगूठे पर डस लेता है और कोई ईलाज कारगर ना होने पर वही साँप एक ओझा का रूप धारण करके गुग्गा से विवाह की सहमति की शर्त पर सीरियल को जीवित कर देता है। अब गुग्गा सीरियल से विवाह करने को राजा की शर्त के अनुसार सात ही दिनों में एक बड़ी बारात लेकर सात समुद्र पार जाने का कठिन काम अपने घोड़े, सांपों और गुरु गोरख नाथ की सहायता से पूरा कर लेता है।

अब एक दूसरी कहानी शुरू होती है। सगी मौसी के जुड़वां बेटे अरजन और सरजन ना केवल ज़ायदाद में हिस्सा माँगते हैं बल्कि सीरियल पर भी अपना हक जताने की चेष्टा करते हैं या छेड़खानी करते हैं। जवाब में गुग्गा दोनों भाइयों के सिर धड़ से अलग करके अपनी माँ बाछल को पेश करता है। ये देख कर बाछल ना केवल विलाप करती है बल्कि गुग्गा को आईन्दा से अपना चेहरा ना दिखाने का प्रलाप करती है। गुग्गा वापस मुड़ कर धरती में समा जाना चाहता है परन्तु धरती उसे जगह नहीं देती। गुग्गा सबकी नज़रों से ओझल हो जाता है लेकिन सीरियल के रंग ढंग देख कर बाछल को शक होता है और वह उसे प्रताड़ित करती रहती है। आखिरकार सीरियल बता ही देती है कि गुग्गा रात को उसके पास आता है। एक रात को पहरा देते हुए बाछल गुग्गा के घोड़े की लगाम पकड़ लेती है और ऐसे में अपनी माँ को अपना चेहरा ना दिखाने के संकल्प के अनुसार गुग्गा अपने घोड़े समेत जमीन में समा जाता है। इस बार धरती उसे जगह दे देती है क्योंकि अब तक वह अढाई कलमा पढ़ कर मुसलमान हो चुका है।

उपरोक्त मूल कहानी के अनेकों रूपान्तर हैं। कभी गुग्गा पीर को एक बड़े इलाके का प्रतापी राजा के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, कभी दिल्ली के राजा अनंगपाल द्वारा अरजन सरजन की सहायता को उस पर चढ़ाई की जाती है, कई बार राजा अनंगपाल की जगह सम्राट पृथ्वी राज चौहान का नाम आता है। एक कहानी यूँ भी बताई जाती है कि गुग्गा पीर आक्रमणकारी मुहम्मद गजनी से लड़ते हुए शहीद हो जाता है। ये भी बताया जाता है कि पश्चिमी उत्तर प्रदेश से लाखों की संख्या में पीले वस्त्र धारण करके जो लोग आते हैं उसका कारण ये है कि सीरियल उस इलाके से थी। उधर पश्चिमी राजस्थान में राजस्थान और गुजरात के इलाकों में लोकगायक भोपा एक अन्य लोकदेवता पाबूजी की जब फड़ बांचते हैं तो ये प्रसंग भी आता है कि पाबूजी की भतीजी केलम की शादी गुग्गा पीर से हुई थी।

ऐतिहासिक रूप में गुग्गा की पुश्तों में से एक मोटे राव चौहान का बेटा करमचंद फिरोजशाह तुगलक (1351-1388) के शासन के दौरान मुसलमान बन कर कायमखान के नाम से हांसी-हिसार का नवाब रहा और उसकी पुश्तें अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक झुंझनु, चुरू और मुख्यतः फतेहपुर (शेखावटी) में कायमखानी के नाम से जागीरदार रही हैं।

अब इस मूल जनश्रुति और गुग्गा पीर की मान्यता के विश्लेषण का सवाल हमारे सामने खड़ा है। मुख्य रूप से जब किसी भी जन आस्था के विषय को टटोला जाता है तो अध्ययन के केंद्रबिंदु अनेक प्रकार के हो सकते हैं। मसलन, एन्थ्रोपोलिजीकल सोशियोलॉजिकल, मिथक, चमत्कार, प्रतीक, सामाजिक आर्थिक वातावरण, सामाजिक मनोविज्ञान, सांस्कृतिक विकास, जातिय सामुदायिक डायनामिक्स आदि आदि। गुग्गा पीर या राजस्थान के अन्य लोक देवताओं के बारे में एक समग्र समझ को विकसित करने के लिए भिन्न भिन्न वैचारिक दृष्टिकोणों से अनेक प्रयास हुए हैं।

मेरे विचार के अनुसार इनमें से सर्वाधिक महत्वपूर्ण औजार है एतिहासिक- राजनैतिक- सामाजिक- आर्थिक दृष्टिकोण। एक व्यक्ति किन परिस्थितियों में लोक नायक बनता है और उसका लोकनायक से लोक देवता में परिवर्तित होना, उसके बारे में समय-काल के हिसाब से लौकिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार के मिथकों का सहज रूप में पैदा होते जाना, उसके प्रति आस्था, मान्यता के प्रकारांतर और उनमे निरंतर परिवर्तन आदि के क्रम को जाने बिना शायद किसी भी लोक देवता को समग्रता में नहीं समझा जा सकता।

मूल कथा अनेक प्रकार की किवंदतियों से घिरी हुई है। लेकिन इन तमाम किवंदतियों में कुछ प्रतीक साझे हैं। राजा का

नि:संतान होना, संतान के लिए नाथ जोगी की सहायता, ननद द्वारा लाँछन लगाना, सगी बहन द्वारा संतान प्राप्ति के लिए स्वार्थी हो जाना, गुग्गा की माँ द्वारा चमत्कारिक रूप से गर्भधारण करना, गर्भ में होते हुए भी चमत्कार दिखाना, सांपों पर शक्तिशाली अधिकार, सांपों के विभिन्न रहस्यमयी रूप, सौतेले भाइयों द्वारा ईर्ष्या और क्लेश, गुग्गा की शक्ति का भगतों में अवतरण, मैडी/ मढ़ीयों की इस्लामिक बनावट, सामाजिक रूप से सबसे निम्न जातियों के सदस्यों द्वारा सवैयों के रूप में डेरू बजाते हुए गुग्गा के निशान को लेकर गुग्गा के जीवन से जुड़े गीतों को गाते हुए भिक्षा माँगना और ताजिए की माफ़िक लोहे की सांकल के गुच्छे से अपने आप को जोर-जोर से मारना लेकिन दर्द का एहसास ना करना, भाद्रपद की नवमी (गुग्गा नवमी) के दिन दीवार पर सांप की या घोड़े पर सवार गुग्गा की तस्वीर बनाकर या मिट्टी से बने घोड़े के सामने धूपिया जलाकर खीर, गुलगुले, नारियल आदि का चढ़ावा चढ़ाकर प्रसाद बाँटना और सबसे बढ़कर सांप के काटने पर गुग्गा मैडी पर जाकर मत्था टेकना, मिट्टी काढना, जमीन पर ही सोना, घर में सांप निकलने पर गुग्गा पीर के नाम से दूध से बनी कच्ची लस्सी का छिडकाव करना ताकि सांप फिर ना निकले।

शेष मान्यताए भी अनेक प्रकार की हैं। जैसे कि जमीन के बँटवारे का जिम्मा गुग्गा पीर के हवाले कर देना और अगले दिन घोड़े के खुरों के निशानों को ही सीमा मान लेने के उदाहरण भी सुनने को मिलते हैं। इन सबके अलावा किसी भी प्रकार के शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक, आर्थिक संकट से उबरने के लिए भी गुग्गा पीर की गुहार लगाई जाती है। सांपों के डसने की घटनाएँ इतनी आम होती थी कि किसान जब हल चलाने के लिए निकलता था तो चलते वक़्त बोलता था 'हाली बाल्दी गोगो रखवालो'। यानी सांप का खतरा केवल हाली को ही नहीं बल्कि बैलों की सुरक्षा भी चिंता का विषय थी। मैडी पर जोत जलाना, धुणे को जलाए रखना, गुग्गा नवमी से कुछ दिन पहले सवैयों द्वारा गुग्गा का निशान लेकर गाते बजाते घर-घर से माँगना, मेले वाले दिन मुख्य मैडी या स्थानीय मैडी पर निशान टिका कर मत्था टेकना, और डेरू की आवाज पर एक विशेष लोच पर नाचना और गाना, कुछ एक भगतों पर गुग्गा की शक्ति का उतरना। भगतों द्वारा अपनी गर्दन में सांपों को लपेटे हुए घुमना मुख्य गुग्गा मैडी में आम तौर पर दिखाई देता है।

पूरे प्रकरण में अनेक प्रतीकों और मिथकों का गहरा पुट है। यहाँ प्रख्यात समाजशास्त्री और इंडोलोजिस्ट वेंडी डोनिजर की ये टिप्पणी उपयुक्त लगती है :

'वास्तविक घटनाओं और भावनाओं से प्रतीकों की उत्पति होती है और उसी प्रकार प्रतीक भी घटनाओं और भावनाओं को पैदा करते हैं। मिलाजुला कर एक ही प्रकरण में वास्तविक और प्रतीकात्मक दोनों का पुट संभव है।'

उन्ही के शब्दों में 'मिथक इतिहास के धुएं की तरह होते हैं और वे सामाजिक धरातल की अग्नि से उपजते हैं। मिथक और सामाजिक धरातल से कल्पित कथाएँ पैदा होती हैं तो कल्पित कथाएँ भी सामाजिक परिवेश को प्रभावित करती रहती हैं। विश्वास, सच्चे हों या झूठे, तथ्य बन जाते हैं। सन 1857 का गदर इस विश्वास पर (सच्चा या झूठा) उबल पड़ा था कि कारतूसों में गाय और सूअर की चर्बी मिली है।'

आलेख को अत्यंत अकादमिक स्वरूप ना देते हुए हम विख्यात एन्थ्रोपोलोजिस्ट बी. मलिनोव्सकी के इस कथन के साथ आगे बढ़ते हैं कि 'कल्पित अवधारणाएं आस्थाओं की एक ऐसी सूची है जो मनुष्य की सोच और कार्यों को सही ठहराने का कार्य करती हैं।'

उपरोक्त सन्दर्भों के मद्देनजर किसी भी सामाजिक-धार्मिक-सांस्कृतिक प्रक्रिया को कभी भी एकान्तिक विचार से समझने का प्रयास एक खंडित समझ ही पैदा कर पाएगा। राजस्थान में केवलमात्र गुग्गा पीर ही एकमात्र लोकप्रिय लोकदेवता नहीं है, बल्कि रामदेवजी, पाबूजी और तेजाजी भी अलग-अलग क्षेत्रों और अलग अलग समुदायों के आस्था के प्रतीक हैं। ये लोकदेवता किन परिस्थितियों में बने और इनका ऐतिहासिक विकासक्रम क्या है, ये जानना भी अति आवश्यक है। क्या इन लोक देवताओं में आस्था रखने वाले किसी विशेष समुदाय के ही रहे हैं या उनमे परिवर्तन होता रहा है। क्या इन देवताओं का प्रारम्भ से देवता का ही चरित्रीकरण था या लोकनायक से लोकदेवता में परिवर्तित हुए हैं। ये भी ग़ौरतलब है कि राज्य सत्ता का इन नायकों/ देवताओं के बारे क्या रुख रहा है और इनके पूजा विधान किस प्रकार से समय और परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहे हैं।

इन तमाम पक्षों पर समग्रता से विचार करके ही गुग्गा पीर और अन्य लोक देवताओं के बारे में कुछ संकेत तो किए ही जा सकते हैं।

• गुग्गा के जन्म का वर्ष अभी तक विवाद का विषय है जिस पर अधिकारिक तौर पर निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। लेकिन तमाम किवंदतियों और ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर इतना तो दावे के साथ कहा जा सकता है उस समय नाथ पंथ आमजन में लोकप्रिय था। इस्लाम की सूफी परम्परा भी अपने पैर फैला चुकी थी। दोनों परम्पराएँ ब्राह्मणवाद के चौखटे से बाहर के समुदायों को आकर्षित कर रही थी। इसमायली पंथ

मुख्य रूप से अछूतों और अवर्णो को अपने दायरे में समेट रहा था और कितने ही मुसलमान नाथ जोगी बन रहे थे। इस प्रकार दोनों तरफ़ से आपसी घालमेल की प्रक्रिया सहज रूप से चल रही थी। गुग्गा और रामदेव जी को गुग्गा पीर और रामदेव पीर के नाम से जाना जाना, उनकी मज़ार होना, रामदेवरा (रुनेचा) में क़ब्रों का होना, मेघवालों और नाथों का मृत्युपरांत दाह संस्कार की बजाय दफ़नाया जाना साझा व्यवहार थी।

गुरु गोरखनाथ के आशीर्वाद से गुग्गा का जन्म, गुग्गा की मज़ार का होना, सदियों से चोहिल राजपूत मुस्लिम सेवादारों का खानदानी परम्परा का निर्वाह करना, मैडियों की इस्मालिक स्टाइल में इमारत और अच्छी खासी संख्या में मुसलमानों की गुग्गा पीर में आस्था आदि इस बात का संकेत है कि गुग्गा पीर का ऐसे परिवेश से संबध था जब नाथपंथ में मुसलमान सहज रूप से शामिल होते थे। सन 1821 और 1891 की जनगणना का हवाला देते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक 'नाथ सम्प्रदाय' में इस बात की तसदीक़ की है। ये ऐसा दौर था जब ब्राह्मणवाद के समानांतर परम्पराए अवर्णों को आकर्षित कर रही थी। ऐतिहासिक रूप से यह दौर 11वीं से 16वीं सदी का था।

पश्चिमी राजस्थान का नागौर इलाके में 12वीं सदी से ही गजनी के सुल्तान बहराम शाह (1117-58) के एक गवर्नर मुहम्मद बहलिम बागी स्थापित हो गया था और इसके बाद 13वीं सदी से लेकर नागौर चिश्ती सूफ़ी धारा का एक महत्वपूर्ण केंद्र बन गया था। फ़िरोज़ तुग़लक़ के समय मुसलमान बने उज्जिहला के चार पुत्रों में से एक शमसखाँ 15वीं सदी की शुरुआत में नागौर का शासक था।

• ये वो दौर था जब राजस्थान में लूटमार, छीना झपटी, हमले , पशुधन छीनना, छोटी छोटी रियासतों को बनाए जाने की होड़ ने असुरक्षा का अजीबोगरीब माहौल पैदा किया हुआ था। इन परिस्थितियों में कमज़ोर वर्ग को सुरक्षा और राहत की विशेष आवश्यकता महसूस होती थी। स्वभाविक है कि ऐसे वातावरण में जिसने भी उनके पक्ष में हिम्मत दिखाई वो उनका नायक बन गया। पाबूजी का थोरी जाति के 7 भाइयों को साथ रखना और अपने राठौड़ खानदान की विरासत को त्याग कर जीना, रामदेवजी का मेघवाल समुदाय के ढेढ़ कहे जाने वाले व्यक्तियों के बीच रहना और अवर्ण व गरीब मुसलमानों को मिलाकर एक नए पंथ 'कामडिया' की स्थापना करना, तेजाजी द्वारा एक गुर्जर महिला के पशुओं को लूटे जाने से बचाते हुए जान की बाजी लगा देना, गुग्गा द्वारा समाज के निम्नतम स्तर के व्यक्तियों से मित्रता रखना आदि ऐसे अनेकों उदाहरण है जिनसे लोकमानस में इनकी छवि लोकनायकों के रूप में बनती गई। शनैः शनैः ये छवि लोक आस्था, लोक धर्म और लोक परम्परा का हिस्सा बन गई।

• धीरे धीरे लोकिक आवश्यकताओं की अन्तश्चेतना के प्रक्षेपण से इन लोकनायकों की सामाजिक मनोवैज्ञानिक छवि लोकनायक से लोकदेवता में रूपांतरित होने लगी। ये प्रक्रिया अनादि काल से चलती आ रही है। देवी देवताओं का नए-नए रूपों में पैदा होना और एक अंतराल के बाद उनकी प्रासंगिकता का समाप्त होना एक निरंतर सामाजिक-सांस्कृतिक-धार्मिक प्रक्रिया रही है। हर प्रकार के चमत्कार और सांपों से सुरक्षित रहने के लिए गुग्गा पीर एक अचूक माध्यम बन गया। समाज के निम्नतम श्रेणी के सदस्यों को गुग्गा पीर हर मर्ज़ की दवा के रूप में दिखाई देने लग गया। क्योंकि उनका प्रवेश ब्राह्मणवादी मंदिरों, पूजा-पाठ, कर्मकांडो में वर्जित था तो उनके लिए गुग्गा पीर या अन्य लोकदेवता ही धार्मिक-लौकिक आकांक्षाओं की पूर्ति करने का एकमात्र माध्यम बनते रहे हैं। बेशक उच्च वर्ण द्वारा इनके लिए उपहास भी उड़ाया जाता था। मसलन रामदेवजी में आस्था रखने वालों पर एक आम तानाकशी होती थी कि 'रामदेव न मिल्या ढेढ़ ही ढेढ़'।

18-19-20वीं सदी में एक बड़ा परिवर्तन देखने को मिलता है। अब केंद्र में मुग़ल साम्राज्य पतनोन्मुखी हो चुका है। साथ ही साथ मुग़ल साम्राज्य की सक्रिय हिस्सेदार रहने वाली राजपूताना शक्तियां चाहे वो जोधपुर हो, बीकानेर हो, जयपुर हो या कोई और, सभी शक्तिहीन होने लगी। दक्कन से मराठों के हमले और लूट बढती गई, आपसी लड़ाईयां भी बढ़ गई जैसेकि जोधपुर बनाम बीकानेर, जयपुर बनाम जोधपुर आदि आदि। 19वीं सदी में अकाल की मार भी बहुत बड़ी थी जिसने लाखों लोगों को दरबदर कर दिया। ऐसे माहौल में एक बदहवासी की मानसिकता देखने को मिलती है। राजपूत-ब्राह्मण चौखटे में सीमित रूढ़िगत धार्मिक देवता, मंदिर और कुलदेवी मान्यताएं अब रूप बदलने लगी। बदली हुई परिस्थितियों में राजनैतिक, सामाजिक, नैतिक मानदंडों को नए सिरे से खड़े करने की चुनौती जो आन पड़ी। निदान के तौर पर राजपूत अभिजात शासक वर्ग ने आमजन में अपनी स्वीकार्यता को बढाने के लिए लोकप्रिय प्रतीकों, मिथकों और लोकदेवताओं को अपनाना शुरू कर दिया। उदाहरण के लिए जोधपुर की पुरानी राजधानी मंडोर में 1707 से 1749 के दौरान 33 करोड़ देवी देवताओं का एक स्थान बनाया गया और वहाँ पर गुग्गा, पाबूजी, रामदेव, तेजाजी को मिलाकर 9 लोकदेवताओं की मूर्तियाँ भी स्थापित की गई।

जोधपुर के महाराजा अजित सिंह (1707-24) विशेष तौर पर रामसा पीर (रामदेवजी) के स्थान रुणेचा जाकर पूजा करते हैं।

वे पाबूजी के स्थान पर भी जाते हैं। बीकानेर के महाराजा गंगा सिंह (1887-1943) रुणेचा और गुग्गा मैडी के स्थानों की परिक्रमा का निर्माण करवाते हैं। बीकानेर के किले के एक दरवाजे का नाम गोगा दरवाजा रखवाते हैं, 1894 में एक पानी के कुंड का निर्माण करवाके उसका नाम गोगा टैंक रखा जाता है। इसी प्रकार के अनेकों उदाहरण दस्तावजों में उपलब्ध है। यह सब राजा और आम प्रजा के बीच नए समीकरण पैदा करने के सूत्र थे जो पुराने शासक और शासित के समीकरण से भिन्न था। संक्षेप में यह सब कुछ राजपूत अभिजात वर्ग द्वारा लोकदेवताओं को हथिया लेने की प्रक्रिया थी जो इन लोक देवताओं के राजपूतीकरण के रास्ते ब्राह्मणीकरण के माध्यम से की जा रही थी।

अब उच्च जातियों के लिए लौकिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए गुग्गा भी उनके अन्य देवी देवताओं के बीच एक स्थान ग्रहण कर चुका है जबकि अनेकों निम्नवर्ग के समुदायों के लिए गुग्गा आज भी उनका मुख्य इष्टदेवता है।

मनोवैज्ञानिक रूप में अपने इष्टदेवता की उच्च वर्ण द्वारा स्वीकारोक्ति उनकी सामाजिक पहचान को तुष्ट करती है लेकिन उनके लोकदेवता को छिने जाए जाने की प्रक्रिया से एक प्रकार की मानसिक उलझन की स्थिति भी पैदा होती है। उदाहरण के तौर पर रूणेचा स्थित रामदेवरा में अनेकों क़ब्रों की वजह से ब्राह्मण पुरोहित हवन किसी ओर स्थान पर जाकर करते हैं।

लोकदेवताओं के ब्राह्मणीकरण के विभिन्न रूप और उसके सामाजिक आयाम को संक्षिप्त रूप से निम्न प्रकार से देखा जा सकता है:-

अब मुख्य गुग्गा मैडी में मेले के समय एक महीने के लिए ब्राह्मण पुजारी भी नियुक्त कर दिया गया जो चोहिल राजपूत मुसलमान द्वारा ख़ानदानी रूप से 12 महीनों के लिए उपस्थित होने के अलावा है। पूजा विधान का यथासंभव ब्राह्मणीकरण किए जाने का प्रयास किया जा रहा है। अब गुग्गा मैडियों में शिव, हनुमान, गणेश, कृष्ण आदि अन्य हिंदू देवताओं की मूर्तियाँ भी स्थापित की जाती है। पारम्परिक रूप से निम्न वर्ग के भगतों का स्थान ब्राह्मण पुजारियों द्वारा लिया जा रहा है। आरती, हवन, गणेश वंदना, संस्कृत श्लोकों के माध्यम से उच्च वर्ण के यजमान अपना स्थान बना रहे हैं। ऐसे दृष्टांत भी देखने में आते हैं कि यजमान अपने ब्राह्मण पुरोहित को मेले में अपने साथ ले जाते हैं जो मेला प्रांगण में ही ब्राह्मण हवन कर लेते हैं।

पुराने साधारण थान की जगह अब गुग्गा पीर की मूर्तियाँ घोड़े पर सवार, हाथ में भाला उठाए हुए बहादुर राजपूत के रूप में आम हो गई है। थान एक छोटा चबूतरा या घर में आले की जगह होती है जिस पर सांप की आकृति छाप दी जाती है या मिट्टी से बने घोड़े रखके पूजा की जाती है।

गुग्गा के कलेंडर और चित्र भी राजपूत योद्धा के रूप में छापे जाते हैं । इसके अलावा गोगा पुराण, गोगा चालीसा, गोगा आरती आदि पुस्तिकाएँ थोक में बेची या बाँटी जाती हैं। इन सबमें गुग्गा को गुग्गा पीर की बजाय गुग्गा वीर लिखा जाता है। एक जन नायक का जन्म और उसकी बहिष्कृत और अछूत समाज के लोक देवता के रूप में पीर से वीर की हैसियत में एक छोटे हिंदू देवता की तस्वीर हमारे सामने है।

सन्दर्भ:

1. ' Folk Religion : Change and Continuity' by H.S. Bhatti

2. ' Economic Conours of Hero's Den: Untalked Dynamics of Gogamedi Shrine in Medival Rajasthan' by Sarita Sarsar

3. The Hindus: An Altenative History' by Wendy Doniger

4. ' Popular Religion inRajasthan: A study of four dieties and their worship in the 19th and 20th centuries' by Rajashree Dhali

5. 'क़यामखां रासा' द्वारा जान कवि (नियामत खां)

संपर्क: 9872890401

देसा की टेक

सुल्तान की सवारी

सुल्तान की सवारी निकल रही थी और देसा उस रास्ते में ही बैठा हुआ था। वजीर उसके पास पहुंचा।

वजीर - दुनियाँ का सबसे ताकतवर सुल्तान इस रास्ते से गुजर रहा है , क्या तुम उसका अभिवादन नहीं करना चाहोगे ? उठो और रास्ते के किनारे खड़े हो जाओ ।

देसा - पर मुझे यह तो बताओ कि खुदा ने प्रजा की सेवा के लिये सुल्तान बनाये हैं अथवा सुल्तान की सेवा के लिये प्रजा को बनाया है ?

साभार - राजेंद्र रंजन चतुर्वेदी

एशियाई खेलों में भारत ने जीते रिकॉर्ड पदक

हरियाणा के खिलाड़ी छाए

□ अविनाश सैनी

(खेल के क्षेत्र में हरियाणा नए कीर्तिमान स्थापित कर रहा है, जो खिलाड़ियों की जी तोड़ मेहनत और लगन और निरंतर अभ्यास का नतीजा है। बेहतर प्रदर्शन व मेडल प्राप्त करने के लिए खिलाड़ियों को 'देस हरियाणा' पत्रिका की ओर से बधाई। प्रस्तुत है एशियाई खेलों में भारतीय खिलाड़ियों के प्रदर्शन पर प्रकाश डालता अविनाश सैनी का लेख। देस हरियाणा पत्रिका के संपादक मंडल से जुड़े रंगकर्मी-संस्कृतिकर्मी अविनाश सैनी रोहतक निवासी हैं। वर्षों तक नवभारत टाइम्स में रिपोर्टिंग की। राज्य संसाधन केंद्र हरियाणा, रोहतक में कार्य करते हुए हरकारा पत्रिका के संपादन से जुड़े रहे हैं। आकाशवाणी के उदघोषक हैं। पिछले दो दशकों से साक्षरता अभियान में नेतृत्वकारी भूमिका निभा रहे हैं - सं.)

इंडोनेशिया के जकार्ता और पेलम्बर्ग में हुए 18वें एशियाई खेलों में भारतीय खिलाड़ियों ने संतोषजनक प्रदर्शन करते हुए इन खेलों के इतिहास में सर्वाधिक पदक जीतने का रिकॉर्ड बनाया है। पदक तालिका में 8वें स्थान पर रहे भारत ने इन खेलों में 15 स्वर्ण, 24 रजत और 30 कांस्य पदकों सहित कुल 69 पदक जीते। इससे पूर्व 2010 में ग्वांग्झू (चीन) में हुए खेलों में भारतीय खिलाड़ियों ने सर्वाधिक 65 पदक जीते थे। इसके साथ ही भारत ने एशियाई खेलों में सर्वाधिक 15 स्वर्ण पदक जीतने के अपने रिकॉर्ड की भी बराबरी कर ली जो उसने 1951 के पहले खेलों में हासिल किए थे।

इन खेलों की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि भारत ने एथलेटिक्स की स्पर्धाओं में 9 स्वर्ण पदकों सहित कुल 9 पदक जीते जो अब तक का रिकॉर्ड है। यही नहीं, इस बार भारतीय खिलाड़ियों ने सेपक तकरा और टेबल टेनिस में पहली बार पदक जीते। यह बात अलग है कि भारतीय दबदबे वाले कुछ खेलों में अप्रत्याशित रूप से हमारे खिलाड़ियों को असफलता का मुँह देखना पड़ा। सबसे बड़ी निराशा पुरुष कबड्डी में मिली जिसमें विश्व विजेता तथा सात बार की एशियाई चैंपियन भारतीय टीम इन खेलों के इतिहास में पहली बार फाइनल में पहुँचने से रह गई। अन्ततः भारत को पहली बार पुरुष कबड्डी में कांस्य पदक से संतोष करना पड़ा।

भारतीय टीम को लीग चरण में भी कोरिया के हाथों हार का सामना करना पड़ा था। महिला कबड्डी में भी दो बार की पूर्व चैंपियन भारतीय टीम ईरान के समक्ष ठहर नहीं पाई और हम स्वर्ण पदक जीतने से चूक गए। यही हाल हॉकी में हुआ। लीग मुकाबलों में लगातार बेहतर प्रदर्शन करने के बावजूद गत चैंपियन भारत की पुरुष हॉकी टीम सेमीफाइनल में अपने से नीची रैंकिंग वाली मलेशिया से 'पेनल्टी शूट' में हार गई और केवल कांस्य पदक जीत पाई। हालाँकि महिला हॉकी टीम ने तीन बार की चैंपियन चीन की टीम को हरा कर 20 साल में पहली बार फाइनल में जगह बनाई लेकिन कबड्डी की तरह महिला हॉकी टीम भी रजत पदक ही जीत सकी। इसके अलावा वर्ल्ड चैंपियन तीरंदाज दीपा कुमारी जहाँ पदक से चूक गई, वहीं चोट के चलते ओलंपिक खेलों में सबका दिल जीतने वाली जिम्नास्ट दीपा करमाकर भी कोई करिश्मा नहीं दिखा पाई।

हरियाणा के दबदबे वाले खेल कुश्ती और मुक्केबाजी में भी भारतीय खिलाड़ी अपेक्षित प्रदर्शन नहीं कर पाए। ओलम्पिक रजत और कांस्य पदक जीतने वाले पहलवान सुशील कुमार और ओलम्पिक पदक हासिल करने वाली देश की पहली महिला पहलवान साक्षी मालिक पहले ही दौर में हार गई। हरियाणवी खिलाड़ियों के कुल प्रदर्शन की बात करें तो राष्ट्रमंडल खेलों की तरह एशियाई खेलों में भी यहाँ के खिलाड़ी छाए रहे।

हरियाणा के खिलाड़ी अपने प्रदेश के अलावा रेलवे और सर्विसेज की तरफ से भी खेले तथा उन्होंने बेहतरीन प्रदर्शन करते हुए 6 स्वर्ण पदकों सहित कुल 18 पदक जीते। कुश्ती में देश को 2 स्वर्ण पदक मिले और ये दोनों ही हरियाणा के खिलाड़ियों ने जीते। बजरंग पुनिया ने 65 कि. ग्रा. फ्री स्टाइल कुश्ती में स्वर्ण पदक हासिल किया जो इन खेलों में देश को मिलने वाला पहला पीला तमगा था। इसी तरह मशहूर फौगाट बहनों में से एक चरखीदादरी की विनेश फौगाट एशियाई खेलों में कुश्ती का स्वर्ण पदक जीतने वाली देश की पहली महिला

खिलाड़ी बनी। उसने यह उपलब्धि 50 कि. ग्रा. भार वर्ग में हासिल की। पाँव में चोट लगने के बाद एक समय विनेश को कुश्ती का खेल छोड़ने की सलाह दी गई थी और कहा गया था कि ऐसा न करने पर उसकी जान भी जा सकती है। लेकिन धुन की पक्की विनेश ने हार नहीं मानी और पहले कॉमनवेल्थ खेलों में और फिर एशियाई खेलों में दोहरी स्वर्णिम सफलता हासिल की।

पानीपत के नीरज चौपड़ा ने एशियाई खेलों के इतिहास में पहली बार देश को भाला फेंक (जेवलिन थ्रो) स्पर्धा का स्वर्ण पदक दिलवाया। इसी तरह अरपिंदर सिंह भी तिहरी कूद में 48 साल बाद भारत को एशियाई खेलों का गोल्ड मेडल दिलवाने में कामयाब रहे। चार साल से सोनीपत में रहकर प्रैक्टिस कर रहे अरपिंदर ने 16.77 मीटर की कूद लगाई। जींद जिले के छोटे से गाँव उझाना निवासी मंजीत सिंह ने पुरुषों की 800 मीटर दौड़ का स्वर्ण पदक जीत कर देश और प्रदेश का नाम रोशन किया। इस 20 वर्षीय खिलाड़ी ने दौड़ पूरी करने में 1:46.15 मिनट का समय लिया। इस स्पर्धा का रजत पदक भी भारत जिनसेन जॉनसन ने जीता।

हरियाणा ने कुश्ती, हॉकी, कबड्डी के अलावा मुक्केबाजी में भी देश को नरक होनहार खिलाड़ी दिए हैं। इन्हीं में से एक रोहतक जिले के गाँव मायना निवासी मुक्केबाज अमित पंघाल ने 49 कि. ग्रा. भार वर्ग में सोना जीतने में सफल रहे।भारतीय सेना में कार्यरत अमित ने फाइनल मुकाबले में ओलम्पिक स्वर्ण पदक विजेता उज्बेकिस्तान के हसनबोय दुश्मातोव को हराया। इन खेलों में मुक्केबाजी का यह इकलौता स्वर्ण पदक रहा। इससे पूर्व अमित ने गोल्ड कोस्ट कॉमनवेल्थ खेलों में रजत पदक जीता था। इनके अलावा यमुनानगर के संजीव राजपूत ने निशानेबाज़ी की 50 मीटर रायफल 3 पोजीशन स्पर्धा में रजत पदक जीत कर लगातार चार एशियन गेम्स में पदक जीतने का रिकॉर्ड बनाया। भारतीय नौसेना में अधिकारी संजीव एशियाई खेलों का स्वर्ण पदक भी जीत चुके हैं। मुक्केबाजी (75 कि. ग्रा.) में कांस्य पदक जीतने वाले हिसार के 26 वर्षीय विकास कृष्ण यादव ने भी बॉक्सिंग में लगातार 3 एशियाई खेलों में पदक जीतने का अनोखा रिकॉर्ड स्थापित किया है। डिस्कस थ्रो में कांसे का तमगा जीतने वाली प्रदेश की बेटी सोनीपत की सीमा पुनिया ने भी इन खेलों में एक नई उपलब्धि अपने नाम की। ग्यारह साल की उम्र से खेलों में भाग ले रही सीमा 4 कॉमनवेल्थ, 2 एशियाई और 3 ओलम्पिक खेलों में भाग लेने वाली देश की पहली खिलाड़ी बन गई है। सीमा ने पिछले एशियाई खेलों में स्वर्ण पदक हासिल किया था लेकिन इस बार उससे बेहतर प्रदर्शन करने के बावजूद वह कांस्य पदक ही जीत पाई। शूटिंग की ट्रैप स्पर्धा में लक्ष्य श्योराण ने रजत और 10 मीटर एयर राइफल स्पर्धा में प्रदेश के अभिषेक वर्मा ने देश के लिए कांस्य पदक जीते। ज्योति बल्हारा ने कुराश जैसे अनाम खेल में रजत पदक और नरेन्द्र ग्रेवाल ने वुशू में कांसे का तमगा हासिल किया। व्यक्तिगत स्पर्धाओं के अलावा विभिन्न टीम स्पर्धाओं में भी हरियाणा के खिलाड़ियों ने उत्कृष्ट प्रदर्शन करते हुए देश के लिए पदक जीतने में अहम योगदान दिया। बीस साल बाद रजत पदक जीतने वाली महिला हॉकी टीम में कप्तान रानी रामपाल सहित प्रदेश की 8 खिलाड़ी रही जिन्होंने कुल 14 गोल किए। कांस्य पदक हासिल करने वाली पुरुष हॉकी टीम में भी अधिकतर खिलाड़ी हरियाणा और पंजाब के रहे। इसी तरह रजत पदक जीतने वाली राष्ट्रीय महिला कबड्डी टीम तथा कांस्य पदक हासिल करने वाली पुरुष कबड्डी टीम में भी हरियाणा के खिलाड़ियों की बहुतायत रही। दूसरा स्थान हासिल करने वाली एक्वेरियम और तीसरे स्थान पर रही रोविंग की टीम में भी हरियाणा के खिलाड़ी रहे। तीरंदाजी में देश को मैन्स टीम कंपाउंड स्पर्धा का रजत पदक दिलवाने में रोहतक के अमन सैनी का अहम योगदान रहा। कुल मिलाकर 18वें एशियाई खेलों में प्रदेश के खिलाड़ियों ने बेहतरीन प्रदर्शन किया। इतना ही नहीं, खेलों के उदघाटन और समापन, दोनों समारोहों में ध्वजवाहक बनने का गौरव हरियाणा के खिलाड़ियों को मिला। उदघाटन समारोह में एथलीट नीरज चौपड़ा और समापन समारोह में हॉकी टीम की कप्तान रानी रामपाल भारतीय दल के ध्वजवाहक बने। गौरतलब है कि इसी साल अप्रैल में ऑस्ट्रेलिया के गोल्ड कोस्ट में हुए 21वें कॉमनवेल्थ खेलों में भी हरियाणा के खिलाड़ियों का दबदबा रहा था। उन खेलों में प्रदेश के खिलाड़ियों ने 22 पदक जीते थे जो देश की तरफ़ से जीते गए कुल पदकों का लगभग 33% था।

सन 2014 के 17वें एशियन गेम्स में भी देश के लिए जीते गए 57 पदकों में से 23 पदक हरियाणा के खिलाड़ियों ने (व्यक्तिगत या टीम के हिस्से के तौर पर) जीते थे। इस बार भारत के 570 खिलाड़ियों ने 36 खेलों में हिस्सा लिया। इन में से 83 खिलाड़ी (50 पुरुष और 33 महिला) हरियाणा से रहे।

संपर्क - 94162 33992

खोया हुआ विश्वास
जातीय आधार पर आरक्षण आंदोलन का दर्द

□ विनोद वर्मा 'दुर्गेश'

वरिष्ठ साहित्यकार आनंद प्रकाश 'आर्टिस्ट' ने 'खोया हुआ विश्वास' उपन्यास में जातीय आधार पर आरक्षण आंदोलन को वर्ण्य-विषय बनाकर वर्तमान ज्वलंत समस्या को अपने हिसाब से उजागर करने का प्रयास किया है। इस तरह के आंदोलन की पृष्ठभूमि चाहे जो भी रही हो पर परिणाम यही सामने आता है कि समाज में व्यक्तिगत स्तर पर जातीय भेदभाव न होते हुए भी एक-दूसरी जाति के लोगों का एक-दूसरी जाति के लोगों के प्रति विश्वास खोया जाता है, जो सामाजिक ही नहीं बल्कि राष्ट्रीय विकास के मार्ग में भी अवरोधक बनकर खड़ा हो जाता है।

प्रथम कड़ी में उपन्यासकार ने लिखा है 'एक तरफ एक व्यक्ति के पास खेत हैं, उद्योग हैं, गाड़ी-मोटरों में चलता है, घर व खेत और उसके द्वारा स्थापित उद्योग-धंधों में काम करने के लिए नौकर हैं और वह अपने बच्चों को विदेश में पढ़ा रहा है या विदेश में पढ़ाने का खर्च उठाने में सक्षम है और यह निश्चित है कि उसकी वंश परंपरा में अब विकास की गति रुकने वाली नहीं है। दूसरी तरफ एक वह व्यक्ति है, जो ऐसे ही किसी व्यक्ति की मोटर-गाड़ी का ड्राइवर है, सुबह सूरज उगने से पहले अपने साहब के यहां पहुंचता है और रात को जग साहब सो जाते हैं, तो वह अपने घर जाकर अपने उन बीवी-बच्चों को जगाता है जो उसका इंतज़ार करके सो चुके होते हैं।' उपन्यासकार की यह दूरगामी सोच को उद्घाटित करने वाली पंक्तियां हैं और अधुनातन समाज का सच भी। समाज में व्याप्त निम्न वर्ग और उच्च वर्ग की खाई को पाटने का काम करने वाली उक्त पंक्तियां उपन्यासकार की लेखकीय प्रतिभा, क्षमता एवं परिपक्वता का परिचय देते हुए उनका क़द बढ़ाने में सक्षम हैं।

दूसरी कड़ी में उपन्यासकार ने आंदोलन से उपजे विनाश के विविध बिम्ब प्रस्तुत करने का सार्थक प्रयास किया है यथा 'जातीय आधार पर आरक्षण के नाम पर दंगा करने वालों ने यह जला दिया, वो जला दिया, इसे लूट लिया, उसे मार दिया, आज इतने मरे, इतने घायल, इतनी दुकानें जलकर खाक हुई, बारात रोकी, दूल्हे को जाने दिया, एम्बुलेंस को रास्ता न मिलने के कारण मरीज की रास्ते में ही हुई मौत, पुलिस ने रास्ता खुलवाने की कोशिश की तो पुलिस पर किया पथराव...।' आदि विवरण हमें फरवरी 2016 में हरियाणा में चले 'जाट आरक्षण आन्दोलन' के समय निरंतर प्रसारित होते रहे ऐसे समाचारों की याद दिलाता है।

तीसरी कड़ी में उपन्यासकार एक दार्शनिक सोच के साथ पाठक के सामने उपस्थित होता है उपन्यास के पात्र रामसिंह की बोली में प्रवृत्तिगत भाषा व्यवहार को लेकर वह कहता है -'क्यों, रामसिंह आदमी नहीं है क्या, जो ऑफिस में अंग्रेजी के सर, मैडम और मिस जैसे शब्द तो क्या हिंदी के श्रीमान् जी और श्रीमती जैसे शब्दों का भी इस्तेमाल नहीं करता है।'

चौथी कड़ी में लेखक ने समाज को सच का आईना दिखाने का प्रयास किया है 'बिल्कुल ठीक समझा है गीता तुमने और अब इसी संदर्भ में समझने वाली बात यह है कि ज़िन्दगी में हमसे आगे निकलने की होड़ में कुछ लोग जान-बूझकर भी हमसे टकराने की कोशिश करते हैं, ताकि एक सुनियोजित तरीके से घटना को दुर्घटना का नाम देकर वो अपराध की सज़ा पाने से बच सकें।'

उपन्यास की अंतिम कड़ी में उपन्यासकार विषय विशेष के गहन अध्ययन एवं प्रस्तुतिकरण के बाद एक निर्णायक के रूप में प्रस्तुत हुआ एक बानगी देखिए 'जब समाज में जाति प्रथा थी, तब समाज में जातियां भी थी, किन्तु आज समाज में जातियां नहीं, जातियों के नाम हैं और इन नामों के सहारे स्वार्थी लोग न केवल अपना-अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे हैं, बल्कि राष्ट्र व समाज का भी बहुत बड़ा अहित कर रहे हैं। इसके कारण कहीं ऑनर किलिंग के मामले सामने आ रहे हैं, तो कहीं जातिगत द्वेष भावना के चलते सामान्य मेल-जोल और सद्भावनापूर्ण दोस्ती को भी प्रेम-प्रसंग का नाम देकर किसी की हत्या करके उसे ऑनर किलिंग का मामला बना दिया जाता है। रोजगार के लिए न केवल सराकरी नौकरियों में आरक्षण की मांग की जा रही है, बल्कि संवैधानिक व्यवस्था के तहत पहले से दिए गए आरक्षण का विरोध भी किया जा रहा है। परदे के पीछे जो व्यक्ति अपनी जाति से भिन्न जाति के स्वयं से श्रेष्ठ किसी व्यक्ति की प्रतिभा, क्षमता व कार्य कुशलता का उपयोग करके उससे अपना काम

निकालवाने के बाद अथवा निकलवाते वक़्त उसकी तारीफ करते हैं और कहते हैं कि इस क्षेत्र में उत्कृष्ट सेवाओं के लिए तो आपको सरकार की तरफ से मान-सम्मान मिलना चाहिए, वही व्यक्ति उसे किनारे करके स्वयं आगे बढ़ने के लिए या अपनी जाति के अन्य किसी व्यक्ति को आगे बढ़ाने के लिए कोई भी तरीका अपनाकर उसकी पदोन्नति में बाधा पहुँचाते हैं और अपनी जाति के व्यक्ति का सहयोग करके उसे न केवल गलत तरीके से पद व पदोन्नति लाभ दिलवाते हैं, बल्कि मान-सम्मान के हक़दार बहुत से व्यक्तियों को छोड़कर अपनी जाति के अथवा अपने चहेते किसी भी व्यक्ति को सम्मानित किए जाने का औपचारिक आधार बना कर उसे सम्मानित करवा कर प्रतिभावान को नीचा दिखाने का प्रयास करते हैं। यही नहीं, विभाजन की त्रासदी को झेल कर अपने दम पर क़ामयाब हुए व्यक्तियों के प्रति भी जातीय भावना से प्रेरित लोग ऐसा ही दृष्टिकोण रखते देखे गए हैं।'

उपन्यास के संवाद साहित्यिक ही नहीं, बल्कि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी सार्थक, छोटे-छोटे किन्तु पाठक के मन पर अमिट छाप छोड़ने वाले हैं। एक-एक संवाद पाठक को सोचने पर विवश करता है। समग्रतः कहा जा सकता है कि प्रस्तुत कृति उपन्यास विधा के सामान्य पाठक ही नहीं बल्कि, अध्येताओं एवं शोधकर्ताओं के लिए भी काफी उपयोगी सिद्ध होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

संपर्क - 9896083277

हरियाणवी लघु कथा

जाय रोया जाड्डा

□ **सोनिया सत्यानिता**

रेडियो आळी दादी के नाम से जाने जाने वाली दादी को "ओबरी आळी"भी कह्या करते। बड़ा सी ओबरी, फिर आँगन ठीक दो मंजली घर उसका। भाग की विडंबना। ओबरी आळी दादी के दस किल्ले। पर मालिक कोई नहीं । दादा गुजर गए थे उसके ब्याह तै पांच साल पाछै। याणी उम्र म्हं बाप की उम्र के आदमी के गैल ब्याह दी थी। ईब बीमारी के सत्तर टंटे।

किल्ले रह गए, ओबरी आळी अपणे सास ससुर की देखभाळ करदी, खेती करदी फेर कंदी भी "किसे के पल्ले नहीं लागूं"

यो छोड़ के चल्या गया, मेरे बाप ने एक के गल्ले लाई मैं क्यूं और किसे का लत्ता ओढ़ ल्यूं?

सास, ससुर चल बसे। ओबरी आळी एकली रहगी। पड़ोस के जेठ से सलाह मशवरा करी कि "मेरे तो बाळक नीं" थाम किल्ले बो ल्यो मेरे तै बस खाण जोगे दाणे दे दियो।

दो साल किल्ले बोए, चार साल होगे ईब नई पीढ़ी के लिए ये किल्ले उनके थे। रजिस्ट्री करा ली और ओबरी आळी के नाम तै किल्ले तरवा दिए। ओबरी आळी नै पता चल्या तो खूब दहाड़ मार मार रोई, पीहर का कोई नीं जो संभाळ करै।

छन्नो के पास रोंदी, किताबो के पास रोंदी, लच्छो को कंहदी सरपंच को बुला बता गलत करा मेरे गेल। पर बुढ़िया लुगाई सारी, सब कहंदे "पां तो तेरे चेणीयां म्ह पड़े सैं" अर तू किल्ले लेवगी। टिकके टूक तोड़ ले नै।

ओबरी आळी के पास रेडियो था, इसलिए कुछ हाण औरत, युवक उसके पास बैठकै रोटी का जुगाड़ कर देंदे।

जाड्डे थे, ओबरी आळी अंधी हो चुकी थी। जिसनै जो मिल्या ठा लेग्या। रजाई, पिलँग, चाकी, बर्तन, टोकणी सब ले गे। बची एक खाट, रजाई अर रेडियो।

पूरी सर्दी कोसदी रही वो—जाया रोया जाड्डा। कोई बूट नीं रे, कोई आग सिलगाणे आळा नीं, कोई सकरांत पे मनाण आळा नीं, ताता पाणी नीं, रे कोई तो संभाळ ल्यो मनै ।

पूरे जाड्डे ओबरी आळी जाड़े को और भगवान को कोसदी रही पर किल्लां गलै रोटी बी गयी। कोई बची-खुची 4 रोटी दे जांदा तो कल खातर बचा लेंदी। चा का कप दिन म्हं मिल जांदा तो खिल जांदी वो। कोई बहु नहळा देंदी, तो ठीक। इबतो बिचारी गंजी हो गयी थी कि कौण बाल सँवारै।

जाड्डे के इन दिनों मे हर रात ओबरी आळी रो के सोंदी। अंधेर के अलावा कुछ हो तो बोले वा। ईब बहु भी रेडियो लेकर चलदी बणी कि रोटी के बदले कुछ तो दे।

जाड्डे को 'मर जाणे जाड्डे' बोलदी बोलदी ओबरी आळी दुनिया छोड़ चली गयी।

(लेखिका ऐंडी हरियाणा चैनल की पूर्व मुख्य एंकर अभी ख़बरे अभी तक न्यूज चैनल में बतौर एंकर कार्यरत है।)

लोक कथा
आपणे की चोट

□ राजकिशन नैन

(राजकिशन नैन हरियाणवी संस्कृति के ज्ञाता हैं और बेजोड़ छायाकार हैं। साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं उनके चित्र प्रकाशित होते रहे हैं।)

एक सुनार था। उसकी दुकान के धौरे एक लुहार की दकान बी थी। सुनार जिब काम करदा, तै उसकी दुकान म्हं कती कम खुड़का हुंदा, पर जिब लुहार काम करदा तै उसकी दुकान म्हं तैं कानां के परदे फोड़ण आळी आवाज सुणाई पड़दी।

एक दिन सोने का नान्हा-सा भौरा उछळ कै लुहार की दुकान मैं जा पड़्या। उड़ै उसकी सेठ-फेट लोह के एक भोरे गेल्यां हुई।

सोने का दाणा लोह के दाणे तैं बोल्या, 'भाई म्हारा दोनुआं का दुःख बराबर सै। हाम दोनूं एक-ए-ढाल आग में तपाये जां सै अर एक सार चोट हामने ओटणी पड़ै सै। मैं सारी तकलीफ बोल-बाला ओट ल्यूं सूं, पर तूं?'

''तू सोलह आने सही सै। पर तेरे पै चोट करण आळा लोहे का हथोड़ा तेरा सगा भाई नहीं सै, अर मेरा ओ सगा भाई सै।'' लोह के दाणे ने दुःख में भर के जवाब दिया। फेर कुछ रुक कै बोल्या 'परायां की बजाय आपणां की चोट का दर्द घणा होया करै।'

साभार: हरियाणवी लघुकथाएं, भारत ज्ञान विज्ञान समिति

संपर्क - 9813278899

यथार्थवाद और सतही यथार्थवाद के बीच एक मुख्य अंतर यह है कि जहां पहला संघर्ष का परिणाम है वहां दूसरा संघर्ष से पलायन का। अच्छे से अच्छे काल में भी सच्चाई कोई पके फल की तरह झूलती चीज नहीं है कि किसी के भी द्वारा तोड़े जाने का इंतजार करे। सच्चाई के लिए हर समाज में हमेशा संघर्ष करना होता है। केवल संघर्ष के रूप बदल सकते हैं। आज एक लेखक को सही अर्थों में यथार्थ से हाथापाई करनी होगी।

हावर्ड फास्ट

रागनी

□ रामकिशन राठी

(रामकिशन राठी रोहतक में रहते हैं। कहानी लेखक हैं । हरियाणवी भाषा में भी निरतंर लेखन करते हैं और समाज के भूले-बिसरे व अनचिह्ने नायकों पर लेख लिखकर प्रकाश में लाने का महती कार्य करते हैं -सं.)

उल्टे खूंटे मतना गाडै मै त्यरै ब्याही आ रही सूं
लोक-लाज तैं डर लागै सै दुनियां तैं सरमा रही सूं

लख-चौरासी जून भोग कै या माणस जूनी थ्यावै सै
बिना पढ़े हों पसु बराबर, वेद सास्तर गावै सै
अकल बिना माणस दुख पावै अक्कल नैं सुख पावै सै
सही जाण ले बात मान ले या सावित्री समझावै सै
लोक-लाज तैं डर लागै सै दुनियां तैं सरमा रही सूं

राम कै सीता जनकदुलारी, घणी विदूषी ब्याही थी
लव-कुश जैसे बेटे जन्मे, जिनकी अजब पढ़ाई थी
शकुंतला नै भरत जन्या था, जो कणव ऋषि की जाई थी
दरिया में गूठी खो दी, जो मछुआरै नै पाई थी
भारतवर्ष बसाया था, मैं ज्यातैं ध्यान लगा रही सूं
लोक-लाज तैं डर लागै सै दुनियां तैं सरमा रही सूं

इज्जत बणती हो तै उसमें, उल्टा हाटणा ठीक नहीं
भले काम में नीत बणै तै, उड़ै नाटणा ठीक नहीं
आच्छी शिक्षा मिलती हो तै, बात काटणा ठीक नहीं
सुधरै जड़ै समाज बावले, नुकस छांटणा ठीक नहीं
कुछ पढ़-लिख कै आ रही सूं तै घर नै ठीक बसा रही सूं
लोक लाज तैं डर लागै सै दुनियां तैं सरमा रही सूं

फेर कहूं सूं पति मेरे, तू बात मान ले मेरी हो
कालेज में जै नहीं पढ़ी तै, मेरे गात की ढेरी हो
हाथ जोड़ कै पां पकडूं सूं इतनी ए बात भतेरी हो
पढ़ लिख कै विद्वान बणूं तै इज्जत बढ़ ज्या तेरी हो
घणी सिफारिश करवावण नै, मैं रामकिशन नै ल्या रही सूं
लोक लाज तैं डर लागै से दुनियां तैं सरमा रही सूं।

संपर्क - 94162-87787

क्या आप जानते हैं

विश्व की समस्त भाषाओं के बारे में सार्वभौमिक सत्य

□ डा. सुभाष चंद्र

जब लोग इकट्ठे होते हैं तो बात ही करते हैं। जब वे खेलते हैं, प्यार करते हैं। हम भाषा की दुनिया में रहते हैं। हम अपने दोस्तों से, अपने सहयोगियों से, अपनी पत्नियों से, पतियों से, प्रेमियों से, शिक्षकों से, मां-बाप से, अपने प्रतिद्वंद्वियों से यहां तक कि अपने दुश्मनों से भी बात करते हैं। अजनबियों से। टेलिफोन पर या प्रत्यक्ष तौर पर। हमारा कोई भी क्षण भाषा से अछूता नहीं है। जब कोई उत्तर देने वाला नहीं होता तो भी हम खुद से बात करते हैं। कुछ लोग सोते हुए बड़बड़ाते रहते हैं। हम अपने पालतू पशुओं कुत्ते-बिल्लियों, गाय-भैंसों-बेलों, भेड़-बकरियों से बात करते हैं।

भाषा हमें अन्य पशुओं से अलग करती है। अपनी मानवता को समझने के लिए हमें भाषा की प्रकृति को समझना जरूरी है जो हमें मानव बनाती है। अफ्रीका में बच्चे के पैदा होने पर उसे किंटू kintu कहा जाता है, जिसका मतलब है वस्तु muntu नहीं, जिसका मतलब है आदमी। भाषा सीखने के बाद आदमी बनता है।

हर मनुष्य एक भाषा जानता है। लेकिन भाषा के बारे में जानते हैं या नहीं। भाषा के बारे में जानने का अर्थ है उसके व्याकरण को जानना यानी उसकी ध्वनियों, शब्दों, पदों, वाक्यों और उसके अर्थ को जानना। विश्व की समस्त भाषाओं के बारे में जानने योग्य सार्वभौमिक सत्य के बिंदु दिए गए हैं।

1. जहां जहां मानव हैं, वहां भाषा है।

2. कोई भी आदिम भाषा नहीं है। सभी भाषाएं समान रूप से जटिल और किसी भी तरह विचार को अभिव्यक्त करने में सक्षम हैं। किसी भी भाषा की शब्दावली में नई आवधारणाओं के लिए नए शब्दों को शामिल किया जा सकता है।

3. सभी भाषाएं समय के साथ परिवर्तनशील हैं।

4. किसी भाषा के भाषायी प्रतीकों की ध्वनि और उनके अर्थ यादृच्छिक हैं।

5. सभी मानव भाषाओं में सीमित ध्वनियां हैं। इन ध्वनियों के जोड़ से सार्थक शब्दों का निर्माण करते हैं और शब्दों को जोड़कर असीमित वाक्यों का निर्माण करते हैं।

6. सभी व्याकरणों में शब्द और वाक्य बनाने के लिए समान किस्म के नियम हैं।

7. सभी उच्चरित भाषा में ध्वनियों के वर्ग होते हैं, जिंहे विशेष गुणों से परिभाषित किया जा सकता है। सभी उच्चरित भाषाओं में स्वर और व्यंजन ध्वनियां होती हैं।

8. सभी भाषाओं में एक जैसी व्यकारणिक कोटियां हैं। जैसे संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, आदि

9. संसार की सभी भाषाओं में अर्थ संबंधी सार्वभौमिक गुण पाए जाते हैं।

10. सभी भाषाओं में निषेधात्मक, प्रश्नवाचक, आदेशात्मक, भूतकालिक या भविष्यपरक वाक्य बनाने के नियम हैं, तरीके हैं, क्षमता है।

11. सभी भाषाओं में अमूर्तताएं होती हैं जैसे अच्छाई, कौशलपूर्ण

12. सभी भाषाओं में स्लेंग, कर्णप्रिय व कर्णकटु शब्द हैं

13. भाषाओं में काल्पनिक, अवास्तविक, कथात्मक उच्चारण है।

14. सभी भाषाएं इतनी समृद्ध हैं कि किसी भी समय, किसी भी परिस्थिति में कुछ भी कहने के लिए चुनाव करने की छूट मिलती है।

15. सभी भाषाओं में असीमित वाक्य निर्माण की क्षमता है। सभी भाषाओं के वाक्य निर्माण के अपने तरीके हैं।

16. सभी मनुष्यों की दिमागी संरचना में भाषा सीखने, जानने और प्रयोग करने की जैविक क्षमता है जो विभिन्न उच्चरित और लिखित में प्रकट होती है।

17. हर सामान्य बच्चे में विश्व की किसी भी बाषा को सीखने की क्षमता है। चाहे वह किसी भी नस्ल, भूगोल, समाज या आर्थिक वर्ग से संबंधित हो। भाषाओं में अंतर जैविक कारणों से नहीं है।

संपर्क - 9416482156

देस हरियाणा प्राप्त करने के लिए संपर्क करें

कुरुक्षेत्र	-	विकास साल्याण	9991878352
	-	ओमप्रकाश करुणेश	9255107001
यमुनानगर	-	ब्रह्मदत्त शर्मा	9416955476
	-	बी मदन मोहन	9416226930
अंबाला शहर	-	जयपाल	9466610508
करनाल	-	अरुण कैहरबा	9466220145
इंद्री	-	दयालचंद जास्ट	9466220146
घरौंडा	-	राधेश्याम भारतीय	9315382236
	-	नरेश सैनी	9896207547
कैथल	-	प्रेमचन्द सैनी	9729883662
सफीदों	-	बहादुर सिंह 'अदिल'	9416855973
जीन्द	-	राम मेहर खरब	9416644812
	-	मंगतराम शास्त्री	9516513872
टोहाना	-	बलवान सिंह	9466480812
नरवाना	-	सुरेश कुमार	9416232339
सोनीपत	-	विरेंद्र वीरू	9467668743
पानीपत	-	दीपचंद निर्मोही	9813632105
पंचकूला	-	सुरेंद्र पाल सिंह	9872890401
	-	जगदीश चन्द्र	9316120057
फतेहाबाद	-	पवन सागर	9996040307
रोहतक	-	अविनाश सैनी	9416233992
	-	अमन वासिष्ठ	9729482329
सिरसा	-	परमानंद शास्त्री	9416921622
	-	राजेश कासनिया	9468183394
गुडगांव	-	अशोक गर्ग	9996599922
हिसार	-	राजकुमार जांगड़ा	9416509374
	-	ऋषिकेश राजली	9467024104
महेन्द्रगढ़	-	अमित मनोज	9416907290
मेवात	-	नफीस अहमद	7082290222
शिमला	-	एस आर हरनोट	01772625092
राजस्थान (परलीका)	-	विनोद स्वामी	8949012494
चंडीगढ़	-	ब्रजपाल	9996460447
	-	पंजाब बुक सेंटर, सैक्टर 22	
दिल्ली	-	सजना तिवारी , नजदीक श्रीराम सेंटर,	
	-	आरके मैगजीन , मौरिस नगर, थाने के सामने	
	-	एनएसडी बुक शॉप	

हरियाणवी ग़ज़ल

□ **कर्मचंद केसर**

तखत बदलग्ये, ताज बदलग्ये।
रजवाड़्याँ के राज बदलग्ये।

सुख-दुक्ख म्हं थे साथी लोग,
इब आपस की लिहाज बदलग्ये।

बीन-बांसरी ढोल नगाड़े,
गाण-बजाण के साज बदलग्ये।

कच्चे-पक्के स्वाद घणे थे,
दूध-दहीं अर नाज बदलग्ये।

कौण बणावै ताजमहल इब,
शाहजां अर मुमताज बदलग्ये।

सही पड़ै थी गरमी-सरदी,
मौसम के मिजाज बदलग्ये।

कुलड़े-फरवी थाल टोकणी,
ओक्खल मुस्सल छाज बदलग्ये।

जनम-मरण अर ब्याह् शादी के,
सारे रीत-रिवाज बदलग्ये।

बिन माणस के चाल्लण लाग्गै,
पनडुब्बी अर जहाज बदलग्ये।

कौण हाथ तै काम करै इब,
मशीनां गेल्याँ काज बदलग्ये।

नाड़ी-बैद रह्ये ना स्याणे,
सब रोगां के ल्याज बदलग्ये।

बेटा-बेटी बह्णु बह्णोई,
सबकै नखरे-नाज बदलग्ये।

पाणी का रंग बदल्या कोन्या,
पीणे आले आज बदलग्ये।

'केसर' इब तो तेरे भी यें,
जीणे के अन्दाज बदलग्ये।

संपर्क – 94677-94988